

# जीवन का उत्कर्ष

जैन दर्शन की बारह भावनाएँ



श्री चित्रभानु

‘जीवन का उत्कर्षः जैन धर्म की बारह भावनाएँ’ ग्रंथ में श्री चित्रभानु की ३५ वर्षों की ज्ञान और ध्यान की साधना का निचोड़ है। ये प्रवचन साधकों को ध्यान की साधना के समय दिये गए थे। इनमें सुस्पष्ट, गंभीर एवं प्रेरणात्मक उद्बोधन हैं। प्रत्येक अध्याय एक-एक भावना का वास्तविक चित्र उपस्थित करता है तथा परिवर्तनशील मनुष्य जीवन में जो अपरिवर्तनशील तत्त्व है, उसकी सम्यक् व्याख्या करता है। इन भावनाओं के द्वारा हम जीवन के सत्य का सही बोध प्राप्त करते हैं। इन भावनाओं के द्वारा प्रत्येक धर्म, वर्ग और संस्कृति का मानव ‘सभी जीवों के प्रति करुणा’ का संदेश ग्रहण करता है।

ये बारह भावनाएं सत्य की अनुभूति के बारह सोपान हैं। ये हमारी आंतरिक अभिज्ञता को जागृत करने के साधन हैं। प्राचीन काल में इन्हें भावनाएँ या अनुप्रेक्षाएँ कहा जाता था। मूल रूप में ये जैन साधुओं को ध्यान के विषयों के रूप में दिए जाते थे, उन दीक्षार्थियों को जिन्होंने हाल ही में सांसारिक जीवन का त्याग किया था, जिससे वे परिचित थे और जिसका स्वाद अभी तक उनके होठों पर था। उन्हें इन चिंतन तत्त्वों में गहराई से उतरना था ताकि वे अपने अंतर्मन से उन स्वादों को पूरी तरह हटा सकें; आलस्य, चिंता, प्रमाद और आसक्तियों से बाहर निकल सकें तथा जीवन के असली अर्थ को ग्रहण करके अपनी वास्तविकता की गहराई तक पहुँच सकें।

# जीवन का उत्कर्ष

## जैन दर्शन की बारह भावनाएँ

श्री चित्रभानु  
संस्थापक, जैन अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र, न्यूयॉर्क

अनुवादक  
डॉ. प्रतिभा जैन

प्रकाशक  
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रंथमाला संख्या-१५५

---

जीवन का उत्कर्ष : जैन धर्म की बारह भावनाएँ

---

लेखक

श्री चित्रभानु, संस्थापक, जैन अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र, न्यूयॉर्क

हिंदी अनुवाद

डॉ. प्रतिभा जैन

© सर्वाधिकार: दिव्य जीवन सोसाइटी, मुंबई

प्रथम हिंदी संस्करण: मई २००८

I S B N: 81-86715-90-8

मूल्य : २००/= रुपये

प्रकाशक:

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

आई.टी.आई. रोड, करौंदी, वाराणसी २२१००५

फोन ९१-०५४२-२५७५५२१, २५७५८९०

दिव्य जीवन सोसाइटी

ई-१, क्वीन्स व्यु, २८/३० वालकेश्वर रोड, मुंबई ४००००६

फोन ०२२-२३६९६८८७, २३६२६९५८, २५७०५७०८

करुणा अन्तर्राष्ट्रीय

७०, शम्भुदास स्ट्रीट, चेन्नई ६००००१, फोन २५२३१७१४

अक्षर-सज्जा-ऐड-विजन, करौंदी, वाराणसी,

मुद्रक : वर्द्धमान मुद्रणालय, भेलूपुर, वाराणसी-२२१०१०



समर्पण

मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय

मुनिश्री चन्द्रकांतसागरजी को

‘जो कुछ भी प्रस्फुटित हुआ है वह उन्हीं बीजों  
का परिणाम है जो आपने मेरे जीवन में बोए थे।’

- चित्रभानु



## विश्व मैत्री की मंगल भावना

मैत्रीभाव का पवित्र झरना,  
मेरे दिल में बहा करे।  
शुभ मंगल हो, विश्व जीवों का,  
ऐसी भावना नित्य रहे॥

गुणवानों के गुण दर्शन से,  
मन यह मेरा नृत्य करे।  
गुणीजनों के गुण पालन से,  
जीवन मेरा धन्य बने॥

दीन क्रूर और दया विहीन को,  
देख के दिल यह भर आए।  
करुणा भीगी आँखों में से,  
सेवा भाव उभर आए॥

भूले भटके जीवन पथिक को,  
मार्ग दिखाने खड़ा रहूँ।  
करे उपेक्षा प्रेम पंथ की,  
तो भी समता चित्त धरूँ॥

चित्रभानु की यही भावना,  
मैत्री घर-घर सुख लाये।  
वैर विरोध के भाव छोड़कर,  
गीत प्रेम के सब गाए॥





## प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'जीवन का उत्कर्ष : जैन दर्शन की बारह भावनायें' पूज्य श्रीचित्रभानुजी द्वारा अंग्रेजी भाषा में रचित '*Twelve Facets of Reality: The Jain Path to Freedom*' का हिन्दी अनुवाद है। जैन धर्म-दर्शन में अत्यन्त महत्त्व रखने वाली बारह भावनाओं पर अपने तरह का यह एक अनूठा ग्रंथ है जिसमें पूज्य श्रीचित्रभानु ने अपनी सरल, मोहक एवं सुबोधगम्य शैली में बारह भावनाओं के महत्त्व को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। पाठक बिना किसी शब्दजाल में पड़े सहज ही भावनाओं के महत्त्व एवं उपादेयता को हृदयंगम कर लेता है।

'भाव्यते इति भावना' अर्थात् संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने के लिये जिस वस्तु का बार-बार स्मरण किया जाता है तथा जिसकी सहायता से आत्मा को संसार के बन्धन से मुक्त किया जा सके, वह भावना है- भावणाजोगसुद्धया जले नावा व आहिया। इसलिये भावनाओं से भावित होना प्रत्येक साधक के लिये आवश्यक है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध ग्रंथ को हिन्दी भाषा में अनुदित कर डा० प्रतिभा जैन ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वे निश्चय ही बधाई की पात्र हैं।

हम आभारी हैं श्री दुलीचन्दजी जैन के जिन्होंने यह ग्रंथ पार्श्वनाथ विद्यापीठ को प्रकाशनार्थ दिया। श्री दुलीचन्दजी का यह पार्श्वनाथ विद्यापीठ से प्रकाशित होनेवाला चौथा ग्रंथ है। उनके विद्यापीठ के प्रति अकादमिक विश्वास एवं आत्मीयता के लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

इस ग्रंथ के प्रकाशन तथा उसकी भाषागत एवं तथ्यात्मक अशुद्धियों को दूर कर उसे शुद्ध एवं प्राञ्जल रूप देने में डा० श्रीप्रकाश पाण्डेय, डाइरेक्टर इंचार्ज, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, का महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है, एतदर्थ हम उनके प्रति अपना आभार ज्ञापित करते हैं। ग्रंथ के प्रकाशन

सम्बन्धी व्यवस्थाओं में डा० विजय कुमार, प्रकाशन अधिकारी, का सराहनीय सहयोग रहा है जिसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

सुन्दर अक्षरसज्जा के लिये 'एडविजन' तथा सत्वर मुद्रण हेतु वर्द्धमान मुद्रणालय के प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक सामान्य जिज्ञासुओं, मोक्षमार्ग पर अग्रसर साधकों तथा शोधार्थियों के लिये अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगी।

अक्षय तृतीया

८ मई, २००८

डा० सागरमल जैन

सचिव

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

## भूमिका

भारत एवं विश्व के २० देशों में 'प्राणी मात्र के प्रति प्रेम' की भावना का प्रचार करने वाले सुप्रसिद्ध अध्यात्म-पुरुष श्री चित्रभानु की अनुपम पुस्तक 'ट्वेल्फ फेसेट्स ऑफ रियलिटी' का यह हिंदी अनुवाद है। आप पिछले ६५ वर्षों से जैन धर्म के अहिंसा, करुणा एवं अनेकांत का संदेश भारत एवं सारे विश्व में प्रभावी ढंग से करते आ रहे हैं।

श्री चित्रभानु जैन अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र, न्यूयॉर्क एवं डिवाइन ज्ञान सोसाइटी, मुंबई के संस्थापक हैं तथा आपने अंग्रेजी में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। आपके व्याख्यान बहुत ही प्रभावी होते हैं। आपका संपूर्ण साहित्य गुजराती भाषा में 'चित्रभानु समग्र' शीर्षक से चार खंडों में शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। हिंदी में यह आपका प्रथम अनुदित ग्रन्थ है।

इस पुस्तक में श्री चित्रभानु के बारह व्याख्यानों का संग्रह है जो उन्होंने जैन अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र, न्यूयॉर्क में दिनांक २ मार्च से १८ मार्च १९७७ तक साधकों को संबोधित करते हुए प्रदान किए थे। इसका संकलन श्रीमती क्लेर रोसेनफील्ड ने किया था तथा यह पुस्तक सन् १९८० में प्रकाशित हुई थी।

भावनाएँ सत्य की अनुभूति के बारह साधन हैं। इन्हें अनुप्रेक्षाएँ भी कहा जाता है। मूल रूप में ये जैन साधुओं को ध्यान के विषयों के रूप में दी जाती थीं, उन दीक्षार्थियों को जिन्होंने हाल ही में सांसारिक जीवन का त्याग किया था। इनका उद्देश्य जीवन के असली अर्थ को ग्रहण करके जीवन की वास्तविकता की गहराई में पहुँचना था। स्वाध्याय प्रेमी गृहस्थ भी इनका निरंतर पाठ करके इन्हें समझने का प्रयास करते थे। ये बारह भावनाएँ हैं - अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ और धर्म।

श्री चित्रभानु ने इस पुस्तक में इन भावनाओं का मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

‘जीवन का उत्कर्ष: जैन धर्म की बारह भावनाएँ’ ग्रंथ में श्री चित्रभानु की ३५ वर्षों की ज्ञान और ध्यान की साधना का निचोड़ है। ये प्रवचन साधकों को ध्यान की साधना के समय दिये गए थे। इनमें सुस्पष्ट, गंभीर एवं प्रेरणात्मक उद्बोधन हैं। प्रत्येक अध्याय एक-एक भावना का वास्तविक चित्र उपस्थित करता है तथा परिवर्तनशील मनुष्य जीवन में जो अपरिवर्तनशील तत्त्व है, उसकी सम्यक् व्याख्या करता है। इन भावनाओं के द्वारा हम जीवन के सत्य का सही बोध प्राप्त करते हैं। इन भावनाओं के द्वारा प्रत्येक धर्म, वर्ग और संस्कृति का मानव ‘सभी जीवों के प्रति करुणा’ का संदेश ग्रहण करता है।

श्री चित्रभानु का जन्म सन् १९२२ में हुआ। सन् १९४२ में आपने श्रमण दीक्षा ग्रहण की तथा सन् १९७० तक श्रमण-जीवन का पालन किया। तदुपरांत धर्म प्रचारक के रूप में पाश्चात्य देशों में जैन सिद्धांतों का विश्वव्यापी प्रचार करने के हेतु आप द्वितीय आध्यात्मिक शिखर परिषद् में भाग लेने जिनेवा पहुँच गए।

आपकी प्रेरणा से जैन समाज ने एक नया इतिहास रचा जब २२ मई, २००१ को भगवान् महावीर के २६००वें जन्म-महोत्सव के शुभ अवसर पर अमेरिका के सदन के प्रतिनिधियों (House of Representatives) के समक्ष केपिटोल में श्री चित्रभानु ने जैन धर्म का अहिंसा का संदेश दिया। इस कार्यक्रम में अमेरिका एवं कनाडा के १४० जैन प्रतिनिधि भी दर्शक गेलेरी में उपस्थित थे। श्री चित्रभानु ने सन् १९४२ से अब तक दस हजार से अधिक उद्बोधन दिए हैं तथा अहिंसा, करुणा एवं शाकाहार का व्यापक प्रचार-प्रसार किया है। सन् १९६३ में संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रथम बार महावीर जयन्ती मनाई गयी।

करुणा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना चेन्नई में सन् १९९५ में हुई। इस संस्था का उद्देश्य विद्यालयों के एवं महाविद्यालयों के विद्यार्थियों के हृदय में अहिंसा, करुणा, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, पर्यावरण की रक्षा एवं शाकाहार का प्रचार करना है। यह प्रतिष्ठान प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में प्राणिमात्र के प्रति मित्रता, गुणज्ञों के प्रति प्रमोद, दुखी जीवों के प्रति दया एवं अपने से विपरीत भाव रखने वालों के प्रति तटस्थ भाव रखने का प्रचार



करती है। अब तक सारे भारत में १५०० विद्यालयों में करुणा क्लबें गठित हो गई हैं तथा लाखों विद्यार्थियों को सुसंस्कारित करने का कार्य कर रहे हैं। श्री चित्रभानु इसके प्रमुख मार्गदर्शक एवं वरिष्ठ

संरक्षक हैं। हम श्री चित्रभानु के आभारी हैं कि उन्होंने हमारे प्रतिष्ठान को इस प्रकाशन का अंग बनाया है।

इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद डॉ. प्रतिभा जैन ने किया है। आप कई कविताओं, कहानियों एवं व्याख्यानों का अंग्रेजी से हिंदी एवं हिंदी से अंग्रेजी में सरस अनुवाद कर चुकी हैं। आपने मद्रास विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में एम. ए. करने के पश्चात् सन् १९९५ से १९९८ तक भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् से जूनियर रिसर्च फेलोशिप प्राप्त करके मद्रास विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। आपने अपनी मित्र श्रीमती जिज्ञासा गिरि के साथ मिलकर 'कुकिंग एट होम विद पेदत्ता' नामक व्यंजन पुस्तक की रचना की जिसे यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय गौरमांड अवार्ड २००६ द्वारा विश्व की सर्वश्रेष्ठ शाकाहारी पुस्तक माना गया।

हम पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी के प्रबन्ध-समिति के पदाधिकारीगण- प्रोफेसर सागरमल जैन, सचिव, तथा श्री इन्द्रभूति बरड, संयुक्त सचिव के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में अपनी सक्रिय सहभागिता निभाई। पुस्तक के भाषागत सम्पादन के लिये हम डा० श्रीप्रकाश पाण्डेय, डाइरेक्टर-इंचार्ज, पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। प्रकाशन सम्बन्धी सहयोग के लिये डा० विजय कुमार, प्रका० अधिकारी, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, भी बधाई के पात्र हैं।

आशा है कि हिंदीभाषी समाज इस पुस्तक का पुरजोर स्वागत करेगा। हम चाहते हैं कि श्री चित्रभानु का संपूर्ण साहित्य हिंदी में भी शीघ्र प्रकाशित हो।

दुलीचंद जैन 'साहित्यरत्न'

अध्यक्ष, करुणा अन्तर्राष्ट्रीय

७०, शम्भुदास स्ट्रीट

चेन्नई - ६००००१



## अनुवादक की कलम से...

यह हमारी कंपनी 'प्रित्या' के अनुवाद टीम का सौभाग्य है कि श्री चित्रभानु के चिंतनशील शब्दों का अनुवाद करने का विरल अवसर हमें मिला।

जो लेखक एक चिंतक है, दार्शनिक है, द्रष्टा है, उनके शब्दों की गहराई को अनुवाद की भाषा में अभिग्रहीत करना एक चुनौती है, मगर उससे परे, एक आह्वान है, आनंद की अनुभूति है। खासकर जब लेखनी किसी विशेष तत्त्व पर चिंतन और मनन की अभिव्यक्ति का माध्यम हो।

यह पुस्तक श्री चित्रभानु की अंग्रेजी पुस्तक 'ट्वेल्फ फेसेट्स ऑफ रियलिटी' का अनुवाद है, जिसमें जैन धर्म की बारह भावनाओं की उत्कृष्ट व्याख्या उपलब्ध है। आपने जीवन की व्यावहारिकता के संदर्भ में इन भावनाओं की उपयोगिता को, उनके मर्म को प्रतिपादित किया है। ये भावनाएँ जैन चिंतन के मुक्ति मार्ग के बारह सोपान हैं। इन्हें अनुप्रेक्षा भी कहा जाता है - द्वादशानुप्रेक्षा।

इस अनुवाद के कार्यभार को जिन्होंने हमारे साथ बाँटा है, सभी के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ :

श्री दुलीचन्द जैन, मेरे पापा, मेरे प्रेरणास्रोत जिन्हें गुरुदेव की अंग्रेजी पुस्तक इतनी प्रिय है कि उन्होंने हिंदी अनुवाद के हर शब्द को गंभीरता से परखा और संपादन कार्य में अपना सम्पूर्ण सहयोग सहृदयता से दिया है।

अहमदाबाद के. ल. बालसुब्रमण्यम, जिन्होंने मूल अनुवाद में यथायोग्य सहायता की।

जिज्ञासा गिरि, मेरी मित्र एवं भागीदार एवं संगीता सुराणा, जिनके सुसंगत सुझावों एवं सहयोग के बिना यह कार्य सुगमता से परिपूर्ण नहीं हो पाता।

पूज्य गुरुदेव के सम्मोहक शब्दों की निर्मल धारा को हमने अपनी समझ और अनुवाद में यथायोग्य अभिग्रहीत एवं अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

**डॉ. प्रतिभा जैन**

भागीदार, प्रित्या

२८, दिसम्बर, २००७







जैनियों ने एक नया इतिहास रचा जब भगवान् महावीर के २६०० वें जन्मोत्सव के अवसर पर श्री चित्रभानु ने अमेरिका के कैपिटल भवन में सदन के प्रतिनिधियों के समक्ष २२ मई, २००१ को जैन धर्म का शाश्वत संदेश प्रदान किया।



विश्वभर में अहिंसा और अनेकान्त विचारधारा के प्रबोधक,  
अन्तर्राष्ट्रीय दार्शनिक श्री चित्रभानु

## श्री चित्रभानु - बहुमुखी व्यक्तित्व की एक झलक

विश्व भर में अहिंसा और अनेकान्त विचारधारा के प्रबोधक अन्तर्राष्ट्रीय दार्शनिक श्री चित्रभानु का जन्म २६ जुलाई सन् १९२२ को राजस्थान के तखतगढ़ में एक धार्मिक परिवार में हुआ। महाविद्यालय के आधुनिक शिक्षण के पश्चात्, भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने हेतु आप महात्मा गाँधीजी के परिचय में आए और भारत के स्वतंत्रता सेनानी बने।

चार वर्ष की कोमल वय में माता की मृत्यु देखी, बारह वर्ष की उम्र में खिलती हुई कली सी छोटी बहन को बुखार से मरते देखा और फिर उन्नीसवें वर्ष में एक मेधावी सहपाठिनी को जानलेवा बीमारी से मौत के मुँह में जाते देखा। इन घटनाओं से आघात लगा और आपकी जीवन दिशा बदली, मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए विश्वविख्यात रहस्यवादी, चिन्तकों से समागम किया। १९४२ में बोरडी (महाराष्ट्र) के सागरतट पर पूज्य आचार्य श्री चन्द्रसागरसूरिजी की छत्रछाया में दीक्षा ग्रहण की और मुनि चन्द्रप्रभसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इकलौते पुत्र को संसार त्याग करते हुए देखकर आपके पिताश्री ने भी दीक्षा ग्रहण की और पू.मुनि श्री चन्द्रकान्तसागरजी के नाम से जाने गए।

श्री चित्रभानु ने श्रमणावस्था में योग, ध्यान एवं धार्मिक ग्रंथों का गहन अध्ययन करके भारत के दूर-सुदूर प्रांतों, गाँवों एवं नगरों में पदयात्रा करके लोक-जागृति फैलाई तथा सामान्य प्रजा में अहिंसा, करुणा, दया, समता, समन्वय आदि जैन सिद्धांतों का प्रचार किया।

सन् १९६९ में भगवान महावीर के जन्म दिवस पर समग्र मुंबई के कत्लखाने बंद करवाए, इससे भी आगे बढ़कर सर्वधर्म के अधिनायकों को समझाकर गांधी जयन्ती, राम नवमी वगैरह आठ त्योहारों पर कत्लखाने बंद करने का प्रस्ताव नगरपालिका में पारित करवाया। आज भी इन त्योहारों पर मुंबई में कत्लखाने बंद रहते हैं।

आंतरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर पश्चिमी देशों में जैन धर्म का प्रचार करने हेतु आप सन् १९७० में जिनेवा में द्वितीय आध्यात्मिक शिखर परिषद् में गए तथा जैन धर्म के सिद्धांतों की अजय घोषणा की, और जैन धर्म में नई क्रान्ति लाकर नये इतिहास का सर्जन किया। विश्वविद्यालय में सन् १९७१ में सर्वधर्म समभाव शाखा के आप प्राध्यापक बने।

सन् १९८१ में सेंडीयेगो के सागर तट पर सत्रह दिन तक ध्यान, साधना करते हुए आपको दिव्य आत्मज्ञान के साथ सोहं का साक्षात्कार हुआ, आप विश्वमानव संत बने और मुक्त प्रवासी रहे।

वर्तमान में आपकी मुख्य प्रवृत्तियाँ - १) आप जैन मेडिटेशन इंटरनेशनल सेन्टर, न्यूयॉर्क, दिव्य ज्ञान सोसायटी, मुंबई और शाकाहार परिषद् के संस्थापक तथा प्रेरक होने के नाते आध्यात्मिक मार्गदर्शक हैं। २) आपने दिव्य वाणी तथा अद्भुत लेखन शक्ति के माध्यम से अमरीका, केनेडा, यूरोप, अफ्रीका, सिंगापुर, जापान, हाँगकाँग, बैंकॉक, मलेशिया, स्विट्ज़रलैण्ड में अहिंसा तथा अनेकान्त का प्रचार करके जैन सेन्टरों की स्थापना करवाई और असंख्य लोगों का सही मार्गदर्शन देकर व्यसन मुक्त तथा शाकाहारी बनाने का प्रयत्न किया। ३) आपने स्वानुभव, गहन अभ्यास तथा प्रबुद्ध जीवन के सारांश स्वरूप अनेक हिंदी, गुजराती तथा अंग्रेजी पुस्तकों का सृजन किया, जो हमारे अज्ञानमय जीवन में दीपक की भाँति प्रकाश फैला रही हैं।

श्री चित्रभानु एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने जैन धर्म को संप्रदायों की दीवारों से ऊपर उठाकर विश्व के मानव मात्र को मैत्री और शान्ति प्राप्त हो, इस भाव से संयुक्त राष्ट्र संघ में उसे प्रतिष्ठित करवाया है। आप आज भी निर्दभ और निर्भयता से सुषुप्त मानव को जागृत करते हुए उसे आत्मज्ञान से प्रबुद्ध कर रहे हैं। हजारों नहीं लाखों लोगों को हिंसा के पापमय परिणाम का ख्याल करवा कर शाकाहारी और करुणामय अहिंसाप्रेमी बना रहे हैं।

आपके विदेशी विद्यार्थियों और साधकों की संख्या अगणित है। विदेशों के अलग-अलग प्रदेशों में आपके द्वारा प्रस्थापित ६७ धर्म प्रचार



केन्द्र हैं। आपकी प्रेरणा से अमरीका के विचारशील धर्म श्रद्धालु लोगों ने 'फेडरेशन ऑफ जैना' ऑर्गनाइजेशन की स्थापना की है और उसके अंतर्गत १४ भव्य मन्दिर तथा भवनों का निर्माण हुआ है। यंग जैन एसोसिएशन के हजारों युवा वर्ग के आप प्रेरणा दाता हैं।

आपके द्वारा लिखी गई अनेक अमूल्य पुस्तकें विदेशी जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

अहिंसा और मानव कल्याण के अनेक कार्य श्रद्धेय श्री चित्रभानु के कर कमलों द्वारा सदा होते रहें, इसी हार्दिक अभिलाषा के साथ-

प्रो. रमेश एच. भोजक  
 एम.ए., एम.फिल.  
 विल्सन कालेज, मुंबई

## लेखक द्वारा अंग्रेज़ी में लिखित पुस्तकें

Lotus Bloom

Fountain of Inspiration

Inspiring Anecdotes

Bondage and Freedom

The Beacon

Jain Master Speaks to One World

Ten Days Journey into the Self

Sense Beyond the Senses

The Philosophy of Soul and Matter

Realize what you are: The Dynamics of Jain Meditation

The Psychology of Enlightenment: Meditations on the Seven  
Energy Centres.



मिशीगन, अमेरिका के लाइट हाउस अध्यात्म-विकास केन्द्र में श्री चित्रभानु के सान्निध्य में  
अहिंसा, अध्यात्म एवं ध्यान का प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए सदस्यगण (दिनांक ८.१०.२००४)



### उत्तरी अमेरिका एवं यू०के० के सभी जैन युवक-युवतियों को समर्पित

ये सभी जैन युवक-युवतियाँ भगवान महावीर के २६०० वें जन्म दिवस पर उनकी अहिंसा की महान विरासत तथा अनेकान्त के जीवन दर्शन को एक नवीनता एवं प्रबल शक्ति के साथ अपने वर्तमान दैनिक जीवन में आचरित करने हेतु दृढसंकल्पित हैं।

(फिफ्थ बाइनियल कन्वेंशन, न्यू जर्सी, जुलाई ४-६, २००२)

## अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय	vii
भूमिका	ix
अनुवादक की कलम से...	xii
श्री चित्रभानु - बहुमुखी व्यक्तित्व की एक झलक	xiii
बारह भावनाएँ	
प्रथम - अनित्य भावना	
अनित्य के भीतर है नित्य	१-१६
द्वितीय - अशरण भावना	
असुरक्षित संसार में स्वयं की सुरक्षा	१७-२६
तृतीय - संसार भावना	
जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति	२७-३५
चतुर्थ - एकत्व भावना	
निर्भरता से मुक्ति	३६-५२
पंचम - अन्यत्व भावना	
अतुल्य की खोज में	५३-६३
षष्ठ - अशुचि भावना	
दीपक की लौ	६४-८०
सप्तम - आश्रव भावना	
कम्पनों के अंतःप्रवाह पर चिंतन	८१-९६

अष्टम - संवर भावना

विराम चिह्न की कला

९७-१०८

नवम - निर्जरा भावना

आत्म-परिष्कार की कला

१०९-११८

दशम - लोक भावना

लोक का स्वरूप

११९-१३२

एकादश - बोधि दुर्लभ भावना

विरल अवसर

१३३-१४४

द्वादश - धर्म भावना

हमारी प्रकृति की वृत्ति

१४५-१५६



## अनित्य के भीतर है नित्य

आज हम सत्य के बारह पहलुओं पर ध्यान एवं चिंतन करेंगे। इन पहलुओं पर चिंतन करने से हम जीवन को उसकी वास्तविकता में देखने लगेंगे, सत्य के निकट आने लगेंगे। जब हमारा मन जीवन को उसकी वास्तविकता में नहीं देखता है, तब वह अपनी पूर्वनिर्धारित धारणाओं के आधार पर क्रिया और प्रतिक्रिया करने लगता है। तत्पश्चात्, वह अपनी सारी शक्ति इन धारणाओं को ठोस करने में लगा देता है।

जब धारणाएँ ठोस हो जाती हैं, तब जीवन कठोर बन जाता है, काँच के टुकड़े की तरह। जब जीवन में कठोरता आ जाती है, तब बहाव नहीं रहता। तब हम अपने-अपने मतों पर अड़ जाते हैं, अपनी ही कट्टरता में बँध जाते हैं। अपने मतों को कायम रखने के लिए हम लड़ने पर भी उतारू हो जाते हैं। फलस्वरूप, हम अल्प समय के लिए प्रसन्न हो जाते हैं या दुःखी हो जाते हैं। ऐसे समय में अगर हम स्वयं को ध्यान से देखें, तो समझ पाएँगे कि हमने अपनी परिवर्तन शक्ति को खो दिया है। इस तरह हम जीवन के बहाव से अपना संपर्क खो बैठते हैं।

ये बारह पहलू जिन पर हम ध्यान करेंगे, सत्य की अनुभूति के बारह सोपान हैं। ये हमारी आंतरिक अभिज्ञता को जागृत करने के साधन हैं। प्राचीन काल में इन्हें भावनाएँ या अनुप्रेक्षाएँ कहा जाता था। मूल रूप में ये जैन साधुओं को ध्यान के विषयों के रूप में दिए जाते थे, उन दीक्षार्थियों को जिन्होंने हाल ही में सांसारिक जीवन का त्याग किया था, जिससे वे परिचित थे और जिसका स्वाद अभी तक उनके होठों पर था। उन्हें इन चिंतन तत्त्वों में गहराई से उतरना था ताकि अपने अंतर्मन से उन स्वादों को पूरी तरह हटा सकें एवं आलस्य, चिंता, प्रमाद और आसक्तियों से बाहर निकल सकें। जीवन के असली अर्थ को ग्रहण करके वे अपनी वास्तविकता की गहराई तक पहुँच सकें।

आप गंभीर शिष्य हैं, खरे साधक हैं, इसीलिए अब ये भावनाएँ आपको दी जा रही हैं। इन पर चिंतन करने से आप उन आवरणों और

भ्रांतियों से परे जा सकते हैं जिनके कारण आप जीवन को उसकी वास्तविकता में नहीं देख पाते। आपके पथ का सबसे प्रथम और अधिकतम अवरोध है तृष्णा। जब आप वस्तु को एक स्फटिक विचार के समान नहीं, मगर अपनी इच्छा पूर्ति का साधन समझ लेते हैं, तब आपकी अनभिज्ञता में तृष्णा उभरने लगती है। फिर आप अपनी सारी ऊर्जा उस वस्तु को पाने में लगा देते हैं। कभी आप उसे हासिल कर लेते हैं और कभी नहीं कर पाते। मगर दोनों ही परिस्थितियों में, ऐसा समय आता है जब आपको उस वस्तु को छोड़ना पड़ता है। जब वह आपकी हथेली में है, तब अगर आपमें अभिज्ञता है, तो उसे देखकर मुस्कुराते हुए कहेंगे, 'क्या यह वही वस्तु है जिसे पाने के लिए मैंने इतना प्रयत्न किया है? क्या इसी के लिए मैंने अपनी ऊर्जा व्यय की है?'

जो वस्तु हमें दूर से आकर्षित और मोहित करती है, वह समीप आने पर वैसी नहीं दिखती। जब आप पास जाते हैं, तब आप आश्चर्य से सोचने लगते हैं, 'क्या यह वही वस्तु है जिसे मैंने दूर से देखा था?' आपने देखा होगा कि जब आप पर्वत को दूर से देखते हैं, तो वह नरम और गोल नज़र आता है। कोहरे से ढका हुआ, वह मोम की तरह दिखता है। मगर जब आप उसके एकदम पास आते हैं, तब पौने पत्थर और चट्टानें नज़र आती हैं।

इसीलिए सत्य की प्रकृति को समझने के लिए हमें यह समझना होगा कि वास्तविकता क्या है, बिना उसे विकृत किए या छिपाए। हमें वे सारे बाहरी आवरण उतार देने होंगे जिन्हें हमारे मन ने निर्मित किए हैं। मन अनेक लुभावने शब्दों और मरीचिकाओं का निर्माण करता है। वह सत्य को चमकीले आवरणों से ढकना चाहता है। जिस तरह अपनी प्यास बुझाने के लिए एक हिरण मरीचिका की तरफ कुलांचे भरता है, हम भी वह सब कुछ पाने के लिए बेचैन हैं जो वास्तविकता में भ्रम मात्र हैं। यदि आप गर्मी के दिनों में सरोवर के शीतल स्पर्श का एहसास करना चाहते हैं, तो आपको अपने वस्त्र उतारने होंगे। अन्यथा आप शीतल जल से सीधा संपर्क नहीं कर पाएँगे। उसी तरह यदि आप जीवन की ताज़गी का आनंद लेना चाहते हैं, तो आपको अपने आवरण उतारने होंगे। शब्द, कल्पनाएँ और सुनिश्चित धारणाएँ— ये सभी आवरणों का कार्य करते हैं। उनका छेदन कीजिए और



आप तुरंत देख सकेंगे कि वे कितने खोखले और अनावश्यक हैं। उनको हटाइए और अपने स्व को पहचानिए।

इस तरह दीक्षार्थियों को समझाया जाता है कि वे बाहरी वस्तुओं से भ्रमित हैं। उन्हें कुछ विशिष्ट प्रतीकों पर ध्यान करने को कहा जाता है। जैसे, सूर्यास्त के समय गुरु और शिष्य बाहर जाकर आसन पर ध्यान में लीन हो जाते हैं। वर्षा के मौसम में कितने रंगों के बादल छा जाते हैं। कभी-कभी इंद्रधनुष नज़र आता है। शायद गुरु शिष्य से कहेंगे, 'इस नैसर्गिक सौंदर्य को देखो। इन रंगों की अनुभूति करो। हर बादल में एक आकार को ढूँढ़ो। प्रकृति के साथ आत्मसात रहो। बाक़ी सब कुछ भूल जाओ। अब अपनी पलकें बंद करो।'

शिष्य सूर्यास्त के बादल के रंगों और आकारों से परिचित हो जाता है। वह अपनी आँखें मूँदकर उस चित्र को अपने मन की आँखों में समा लेता है। बार-बार अपनी आँखें खोलकर प्रकृति के बदलते हुए दृश्यों को देखता है और फिर से आँखें बंद करके ध्यानमग्न हो जाता है।

दो घंटों में अँधेरा छा जाता है। गुरु प्रश्न करते हैं, 'वत्स, क्या नज़र आ रहा है?'

शिष्य कहता है, 'मुझे कुछ नज़र नहीं आ रहा है। सब कुछ चला गया।'

अब गुरु पूछते हैं, 'कहाँ चले गए - वे आकार, रंग, बादल, वह सौंदर्य - कहाँ लुप्त हो गए?'

शिष्य चुप्पी में खो जाता है, वह विचारमग्न हो जाता है। उत्तर का आभास भी है। वह इंद्रधनुष, वह सौंदर्य लुप्त हो गया है, और फिर भी, गया नहीं है। यही ध्यान का बिंदु है - सभी कुछ इस जगत् में ही विद्यमान है।

गुरु शिष्य से कहते हैं, 'कुछ भी लुप्त नहीं हुआ है। सब कुछ यहीं है। मगर पृथ्वी की परिक्रमा के कारण तुम बदलाव को देखते हो। तुम्हारी भौतिक दृष्टि को ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ चला गया है।'

'अब अपनी अंतर्दृष्टि का प्रयोग करो। देखो, संपूर्ण ब्रह्मांड एक अटूट लय में घूम रहा है। वही सूर्य जिसे हम यहाँ से लुप्त मानते हैं, पृथ्वी

के उस पार उदय हो रहा है। सूर्य तो वही है। स्वयं को पृथ्वी के धरातल से उठाकर सूर्य की ऊँचाई तक ले चलो। अब तुम्हें सूर्य हमेशा दृष्टिगोचर होगा। अपने भीतर के सूर्य से अभिज्ञ रहो, तुम्हारे अंदर अपरिवर्तनशील जीवन है।'

निरंतर होते परिवर्तनों के पीछे कायम है स्थिरता। परिवर्तन भी स्थिरता की अविरल उपस्थिति का संकेत ही है।

जैसे ही एक सूखा पत्ता गिरता है, उसकी जगह एक हरा पत्ता उगने लगता है। अगर हम सजग हैं, तो जान लेंगे कि उस नन्हें नए पत्ते के पीछे अपरिवर्तनशील जीवन का सौंदर्य है। उसी जीवन के कारण एक आकार गिरता है और दूसरा आकार उभरता है। पुराने पत्ते की आत्मा एक नया रूप धारण कर चुकी है जिसमें और अधिक ऐंद्रिय उपकरण हैं जिनके माध्यम से इस जगत् का नवीन और सूक्ष्म तरीकों से प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

हम देख रहें हैं कि सारी सृष्टि अभिज्ञता के उच्चतर सोपानों पर बढ़ना चाहती है। इसके लिए परिवर्तन अवश्यंभावी है। परिवर्तन के कारण ही अपरिवर्तनशील हर क्षण स्वयं को ताज़गी के साथ प्रकट करता है। उसके बिना न ही विकास है, न नवीनीकरण।

जब हम निश्चित रूप से समझ जाते हैं कि परिवर्तन विकास के लिए है एवं विकास हमारी आंतरिक दिव्यता की अभिज्ञता के लिए है, तभी हमें मुक्ति की प्रेरणा मिलेगी, जानी-पहचानी वस्तुओं से बँधने की आदत से मुक्ति। तभी हम बदलाव के भय की बेड़ियों से उन्मुक्त होने के लिए आतुर होंगे।

जब यह सत्य हमारी चेतना में पहुँचेगा, एक नया द्वार खुल जाएगा। हमारी कट्टर दृष्टि बदलने लगेगी। 'लुप्त,' 'गायब,' 'विलीन,' 'मौत' आदि शब्दों के अर्थ स्पष्ट हो जाएँगे, ये शब्द खोखले हैं, मार्गच्युत करने वाले हैं, ऐसे शब्द सिर्फ हमारी भौतिक दृष्टि पर आधारित हैं, हमारी अंतर्दृष्टि पर नहीं। इसलिए जो एक के लिए 'मृत्यु' है, वही दूसरे के लिए 'जन्म' है, दोनों एक ही सागर रूपी जीवन की तरंगें हैं।

इस तरह गुरु शिष्य को प्रतिबोध देते हैं, 'परिवर्तन के कारण ही हम अपरिवर्तनशील को महसूस करते हैं, एवं वही अपरिवर्तनशील सारे परिवर्तन का कारण है।' 'सर्वोत्तम' के शिखर तक पहुँचने के लिए हमें 'मध्यम' और 'उत्तम' के सोपानों से गुजरना पड़ता है। वैसे ही, सारे रूप और आकार भी बेहतर बनने के लिए बदलते रहते हैं। अंततः हम इतने प्रबुद्ध हो जाते हैं कि अपने आंतरिक सत्य के आलोक का अनुभव कर सकते हैं, जो आत्मा का स्थायी मंगल है। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते हैं, इस अभिज्ञता को विकसित कीजिए कि सूर्यास्त में सूर्योदय निहित है और सूर्योदय में सूर्यास्त छुपा हुआ है। लुप्त होना और प्रकट होना - दोनों ही जीवन की क्रीड़ाएँ हैं, दोनों ही अपरिवर्तनशील के प्रकटीकरण हैं।

ध्यान के इस प्रथम सोपान के चिंतन को कहते हैं अनित्य। अनित्य अर्थात् क्षणभंगुर और परिवर्तनशील। नित्य अर्थात् धिरंतन, अपरिवर्तनशील। मन के लिए अनित्य भाव को समझना कष्टदायक है। क्यों? क्योंकि मन अस्थायी को स्वीकार करके सोचता है कि वही अंत तक टिकने वाला है। मन ने जिनका सृजन किया है - वस्तुएँ, पदार्थ, विचार, रिश्ते, पद - उन सभी से बँध जाता है। इसीलिए समय आने पर वह उनका त्याग करने के लिए तैयार नहीं होता। ऐसा मन कहता है, 'यह मेरे साथ रहने वाला है। यह मेरा है।' मगर प्रकृति की वृत्ति कहती है, 'न ही कुछ तेरा है और न ही मेरा।'

अगर वह आपका बन जाएगा, तो उसकी प्रकृति बदल जाएगी। बदलाव की उसकी क्षमता खत्म हो जाएगी। बहता पानी निर्मला, ठहरे सो गंदला होय। अगर बदलाव की क्षमता खत्म हो गई, तो जीवन की ताज़गी चली जाएगी, जीवन अवरुद्ध हो जाएगा। अगर हमेशा गर्मी का मौसम रहेगा, तो आप सर्दी की कामना करेंगे। अगर गर्मी बढ़ती जाएगी, तो आप सहन नहीं कर सकेंगे। उसी तरह जब सर्दी का मौसम बड़ी देर तक रहता है, तो आप गर्मी के सपने देखते हैं। बदलाव से सब कुछ नवीन और तरोताज़ा हो जाता है।

हमें अपने मन को पुनः शिक्षित करना है। अन्यथा वह आसक्ति की ओर बढ़ेगा, जिससे दुःख उत्पन्न होगा। जब हम किसी व्यक्ति या वस्तु से

बिछड़ जाते हैं, हमारा मन उसे उसके बिछोह को स्वीकार नहीं करता। आसक्त मन उस रिश्ते के सौंदर्य को नष्ट कर देता है। यह सत्य इतना कड़वा है कि लोग इसे दूसरों के लिए भले ही स्वीकार कर लें, मगर स्वयं के लिए नहीं कर पाते।

जब मन आसक्त नहीं है, तब उस पर ध्यान दें। एक कारखाने में एक कर्मचारी को तार मिला कि उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया। वह एक हफ्ते की छुट्टी लेकर अपने शहर जाना चाहता था ताकि रिश्तेदारों को सांत्वना दे सके तथा स्वयं सांत्वना प्राप्त कर सके। जब वह अपने मालिक के पास छुट्टी की इजाजत के लिए गया, तो मालिक भोजन के लिए बाहर गए हुए थे। कर्मचारी ने मालिक की मेज़ पर तार रखा और वहाँ से चला गया।

उन दिनों मालिक की माँ भी काफी बीमार थी। इसलिए जब वे अपनी मेज़ पर लौटे, तो उन्होंने तार पर संदेश देखा कि 'तुम्हारी माँ का स्वर्गवास हो गया है', मगर यह नहीं देखा कि तार किसके नाम पर था। वे तुरंत ही उदास हो गए और मेज़ पर सिर रखकर आँसू बहाने लगे।

जैसे ही कर्मचारी वापस लौटा, वह समझ गया कि उसके तार की वजह से गलतफहमी हो गई है। उसने तुरंत बात समझाने की कोशिश की, 'साहब, मैं आपके पास छुट्टी की इजाजत लेने आया था क्योंकि मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया है।' मालिक ने पूछा, 'क्या तुम्हारी माँ भी चल बसी है?'

'नहीं साहब,' उसने कहा, 'मैंने वह तार आपकी मेज़ पर रखा क्योंकि आप यहाँ नहीं थे। आपकी नहीं, मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया है।'

'ओह, मेरी माँ नहीं, तुम्हारी माँ?' मालिक ने चैन की साँस लेते हुए पूछा।

'हाँ साहब,' उसने कहा, 'मुझे अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए छुट्टी की इजाजत दीजिए।'

अब मालिक का पूरा रवैया बदल गया। वे उपदेश देकर समझाने लगे, 'तुम वहाँ जाकर अपना वक्त क्यों बरबाद करते हो? वह तो चली गई और उसी तरह इस संसार की सब चीज़ें देर सबेर हमें छोड़ देंगी। अपने आपको इतना दुःखी क्यों करते हो?'

देखिए इस मन को! जब यह आसक्ति से बँधा हुआ नहीं है, तब दूसरों को कितने महान सत्य सिखा सकता है? जब आप किसी के चारों ओर धागा बुनते हैं, तब खुद उसमें उलझ जाते हैं। मन का भी यही हाल है। छोटी से छोटी वस्तु के टूटने, बदलने या जाने से आपके संयत भावों का संतुलन खो जाता है। क्यों? क्योंकि उस वस्तु पर आपने अपनी मोहर लगाकर उस पर 'यह मेरी है' का लेबल लगा दिया है।

जो वस्तुएँ आपसे जुड़ी हुई नहीं हैं, आप उनके इर्द-गिर्द धागा नहीं बुनते हैं। अगर आप दूसरों के लिए ज्ञानी बन सकते हैं, तो फिर अपने मन को आसक्ति और बंधन से दूर रहने की शिक्षा क्यों नहीं देते? जिस तरह आप दूसरों के शोक संताप में उनसे शांत रहने की अपेक्षा करते हैं, वैसी ही उम्मीद स्वयं से क्यों नहीं करते? स्वयं के लिए एक नियम और दूसरों के लिए अन्य नियम, इस तरह का भेदभाव क्यों?

अगर आपके दाँत में दर्द है, तो आपको लगता है मानो सिर में भूकंप हो रहा है। मगर जब वास्तव में भूकंप आता है, तो आप इतना ही कहकर छोड़ देते हैं, 'यह प्रकृति का नियम है।' तब आप पर असर क्यों नहीं होता? 'मैं' और 'मेरा' पर जोर देते-देते आप जीवन की समग्रता के साथ अपना संबंध खो बैठते हैं। आपने अपनी सारी शक्ति आवश्यकता, लालच और आसक्ति में लगा दी है। आपने जीवन की सारी महत्ता अपने चारों ओर बुने हुए जाल पर केंद्रित कर दी है।

अब इस जाल की वजह से आप उदास, शोकातुर और नाराज हैं। एक छोटे से शब्द, भाव या अपमान से आपका सारा दिन बिगड़ जाता है। फिर भी अपनी हृदयहीनता में आप दूसरों का अपमान करते हैं और भूल भी जाते हैं। क्यों? क्योंकि असीम के साथ आपका संबंध नहीं है। सब कुछ मन में स्वार्थ भाव से केंद्रित है एवं वह मन नित्य नहीं है। वह सतत परिवर्तनशील है।

इसी बात की पुष्टि करते हुए गुरु शिष्य से कहते हैं, 'नित्य और अनित्य पर चिंतन करो। यह जानने का प्रयास करो कि नित्य क्या है और अनित्य क्या है? अनाज को घुन से अलग करो। अभी दोनों मिले हुए हैं।

असली अनाज को घुन से छानना सीखो। फिर तुम जान सकोगे कि क्या नित्य है और क्या अनित्य है।’

छानने की प्रक्रिया एक आंतरिक प्रक्रिया है। उसके लिए आपको अपने भीतर आना होगा। पहले वस्तुओं के नश्वर रूपों को पहचानें और स्वीकार करें। तभी आप प्रकृति की वृत्ति का अनुभव करेंगे जो सतत परिवर्तनशील की अपरिवर्तनशील भूमिका है।

इस प्रक्रिया से आप अपने शब्द का, अपनी अभिव्यक्ति का, अपने संबंधों का विवेक से चयन करना सीखेंगे। कृत्रिमता चली जाएगी। अब आप नहीं कहेंगे, ‘मैं तुम्हारे लिए मर सकता हूँ।’ यह कहना आसान है, मगर वास्तविकता में कोई किसी के लिए नहीं मरता। यह सब सिर्फ जताने की बात है। लोग सिर्फ अपनी आसक्ति के कारण मरते हैं, किसी और के लिए नहीं।

किसी भी शब्द को कहने से पहले उसे महसूस करें। उसका आस्वादन करें। जैसे ‘आम’ शब्द सुनने वाले व्यक्ति के मन में आम का स्वाद और उसकी लालसा जगती है, उसी तरह आप भी अपने अंदर शब्द के असली अर्थ का अनुभव करें। जब आपको इस सत्य की अनुभूति होगी, तब हर शब्द सीधा आपके अनुभव से निकलेगा। आपको शब्दों के जाल बुनने की जल्दबाजी नहीं होगी।

ऐसे कई महान कवि और लेखक हुए हैं जिन्होंने ज़्यादा नहीं लिखा, मगर जो भी लिखा, भावना की गहराई से लिखा। उनकी लेखनी उनकी अनुभूति से उत्पन्न हुई, वह उनकी भावना की अभिव्यक्ति थी। और ऐसी गहराई से जो भी शब्द निकलता है, अमरत्व को प्राप्त करता है। ऐसे शब्दों में अमरत्व का स्पर्श निहित है। . . .

अब हम आत्म निरीक्षण की गहराई में उतर रहे हैं। अनाज में से घुन अलग करते हुए, हर शब्द में हमारी भावना की यथार्थ अभिव्यक्ति करते हुए, हम वहाँ पहुँच जाते हैं, जिसे हम ‘मैं’ कहते हैं। यह ‘मैं’ क्या है? क्या यह नश्वर ‘मैं’ है जो अस्सी या नब्बे वर्ष तक रहता है? जब शरीर निष्क्रिय हो जाएगा, तब वह कहाँ जाएगा? क्या वह अँधेरे में गुम हो जाता है या उसमें अमरत्व का कोई गहरा भाव है?

इस 'मैं' का निरंतर प्रयोग करने के बावजूद अधिकांश लोग इसे नहीं जानते। जब हम कहते हैं, 'मैं तुमसे मिलकर बात करना चाहता हूँ,' तब 'मैं' से हमारा क्या आशय है? क्या हम शरीर और इंद्रियों को 'मैं' कह रहे हैं? क्या हम कह रहे हैं, 'मेरी इंद्रियाँ तुमसे मिलना चाहती हैं?'

क्या वाकई मैं सिर्फ शरीर ही है? या क्या उससे परे कुछ और है? जब डॉक्टर किसी व्यक्ति को मृत घोषित करता है, तब शरीर तो यहीं है, इंद्रियाँ भी यहीं हैं। मगर जो चेतन, जीवंत शक्ति एहसास कर सकती थी, वह अब इस शरीर में नहीं है। जिसे भी आपने 'मैं' समझा था, वह सब कुछ यहीं है। तब क्या चला गया? पल भर पहले उम्मीद थी, मगर अब डॉक्टर कहता है, 'कोई उम्मीद नहीं बची।' पल भर में क्या बदल गया है? क्या शरीर और इंद्रियों के 'मैं' से परे कोई और 'मैं' है जो शरीर से जा चुका है?

सीधे स्वयं के पास जाइए और पूछिए, 'वह क्या है जो चला गया?' जब आप कहते हैं, 'मैं तुमसे प्यार करता हूँ,' तो क्या आपका तात्पर्य शरीर से है?

अगर ऐसा है, तो हम उसे कफन में क्यों डाल देते हैं? हम उसे क्यों नहीं रखते हैं? रसायनों के प्रयोग से हम शरीर को टिका सकते हैं, मगर हम उसे रखना नहीं चाहते। जिस शरीर में से असली 'मैं' लुप्त हो चुका है, हमारे मन में उसके लिए वही संचार और कोमल दृष्टिकोण क्यों नहीं है, वही प्रेम और आनंद का एहसास क्यों नहीं है?

क्या लुप्त हुआ है और कहाँ चला गया? 'उसका' अस्तित्व लुप्त नहीं हुआ। अगर वह लुप्त हो गया, तो फिर यह जगत् अनित्य है, सतत परिवर्तनशील है, और कुछ भी नहीं।

मगर अपरिवर्तनशील है, सारतत्त्व है। सिर्फ किसी विशेष क्षण में, किसी विशेष व्यक्ति में ऐसा प्रतीत होता है कि उसका अस्तित्व नहीं है। ऐसा भान होता है मानों संध्या अपनी अलौकिक ललाई और आभा लिए गायब हो गई है। फिर भी, हम जानते हैं कि वह हमेशा के लिए नहीं गई है। संध्या यहीं कहीं है, किसी नवीन रूप में।

अगर आप दो हजार मील प्रति घंटे की रफ्तार वाले हवाईजहाज में यात्रा करेंगे, तो सूर्य की आभा को देख सकेंगे। आप उसके साथ-साथ रह सकते हैं और देखेंगे कि वह आभा कहीं नहीं जाती है। उसके साथ रहते-रहते आप संध्या से आगे, सूर्य से भी आगे जा सकेंगे।

हम कहते हैं कि सूर्य उदय होता है और अस्त भी, मगर जानते हैं कि ऐसा नहीं होता है। पृथ्वी की परिक्रमा ही उदय और अस्त की मरीचिका का कारण है। हमारे शब्दों का प्रयोग उपयुक्त नहीं है। उसी तरह, वास्तविकता में हम नहीं कह सकते कि 'मैं' लुप्त हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह लुप्त हो गया है, मगर उसने दूसरा कोई आकार, दूसरा रंग, दूसरी आभा ग्रहण कर ली है। इधर तो कोई किसी के विरह में आँसू बहा रहा है, उधर वह किसी और का मन बहला रहा है। किसी गृह में खुशी खिलखिला रही है और कोई इस एहसास से झूम रही है, 'अहा! मैं गर्भवती हूँ।'

क्या बीत चुका है? किसका आगमन हुआ है? सिर्फ आवरण, बाहरी रूप, मकान। यह 'मैं' नहीं। यह 'मैं' अनादि काल से सतत चलायमान है, अपने पर्यायों के विकास में स्वयं के सत्य की गहरी अनुभूति करता हुआ। संपूर्ण जगत् मुक्ति तक पहुँचने का माध्यम है। . . .

जब कोई आपकी दृष्टि से चला जाता है, तब उस रिश्ते को, उस बीते हुए संप्रेषण को याद कीजिए। अपनी सूझबूझ से स्वीकार करना एक बात है, उदासी और मायूसी से जीना अलग बात है। किसी बात को शांति और गहरी सोच के साथ स्वीकार करना और आँसू बहाकर, शोक मनाकर जीवन में रुचि खो देना एक ही बात नहीं है। आश्रित होने की वजह से लोग आँसू बहा-बहाकर तल में डूब जाते हैं। पहले एक लकड़ी का सहारा था, अब वह सहारा जा चुका है। लोग उस लकड़ी का शोक मना रहे हैं, व्यक्ति का नहीं। अब वे किसके सहारे जाएँगे?

अपनी सोच को बदलना इतना आसान नहीं है। हम कल्पनाओं, विश्वासों और प्रतिबंधों की दुनिया में जीते हैं। ये वे दीवारें और आवरण हैं जो हमें स्वयं के और दूसरों के असली 'मैं' को जानने और अनुभव करने से रोकती हैं।



उपगुप्त नामक एक युवा साधु का सुंदर दृष्टांत हैं। वर्षा ऋतु की रात में, जब वन का पथ अँधेरे की चादर से ढका हुआ था, उपगुप्त एक वृक्ष को ढूँढ़ता हुआ पहुँचा और ध्यान करने बैठ गया।

अब ऐसा हुआ कि एक सुप्रसिद्ध नर्तकी उसी समय वन से गुजर रही थी, अपने प्रियतम से मिलने के लिए। अँधेरा इतना गहरा था कि पथ नज़र नहीं आ रहा था। अपना रास्ता ढूँढ़ने के लिए वह ज़मीन पर देखते हुए चल रही थी कि वह उपगुप्त से टकरा गई।

‘ओह,’ वह चौंकी। ‘यहाँ कौन है?’

तभी आसमान में बिजली कौंधी और उसकी रोशनी में नर्तकी की नज़र उस व्यक्ति पर पड़ी जिससे वह टकराई थी।

‘इतना खूबसूरत व्यक्ति यहाँ बैठा है,’ उसके मन में विचार उठा। ‘कितना शांत और निश्चल है! इसका सुंदर चेहरा और शरीर देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों संगमरमर से तराशा गया हो। ओह, अगर मुझे यह व्यक्ति मिल जाए, तो धरती पर स्वर्ग मिल जाएगा!’

उसे अपने सौंदर्य पर नाज़ था। वह उस ज़माने की सबसे मशहूर नर्तकी थी और चाहने वाले उसके चरणों में खिंचे चले आते थे। उसने कहा, ‘तुम इतने शांत हो, तुम्हारे चेहरे पर इतना तेज़ है। कृपया मेरे साथ चलो।’

जब उसे जवाब नहीं मिला, तब उसने उपगुप्त को हिलाकर कहा, ‘तुम किस पर ध्यान कर रहे हो? देखो, मैं कौन हूँ!’ उपगुप्त ने नर्तकी को पहचान लिया, ‘मैं जानता हूँ कि तुम कौन हो। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम मुझे चाहती हो, मगर यह सही समय नहीं है। तुम अपने रास्ते जाओ। मैं तुमसे किसी और दिन मिलूँगा।’

नर्तकी ने सोचा, ‘कहता है - मैं जानता हूँ कि तुम मुझे चाहती हो, फिर देर किस बात की?’ उसने फिर से उपगुप्त से कहा, ‘टालने का कारण क्या है? देर हो जाएगी। यही सही समय है।’

उपगुप्त ने जवाब दिया, ‘मैं जानता हूँ, मगर सही समय सही ढंग से नहीं आया है। वादा करता हूँ कि एक दिन मैं तुमसे मिलूँगा। याद रखना,

जैसे तुम मुझसे प्रेम करती हो, मैं भी तुम से प्रेम करता हूँ। जब सही समय आएगा, तब मैं आऊँगा।’

नर्तकी को लगा कि उपगुप्त का दिमाग ठिकाने नहीं है। वह वहाँ से चल पड़ी।

यौवन विद्युत के समान है, परछाई के समान, जल के बहाव के समान, सतत चलायमान, वेगवत्। दस वर्ष बीत गए। नर्तकी ने अपने यौवन की ऊर्जा का अत्यधिक उपयोग किया था, अब वह थकान से क्लान्त थी। उसने अपने शरीर का ध्यान नहीं रखा था और अब वह त्वचा की व्याधि से व्यथित थी। वह ज्वर से काँप रही थी और उसकी त्वचा पर कई फफोले थे। कोई उसकी तरफ देखना भी नहीं चाहता था। राजा ने भी उसे नगर से निकाल दिया। बेहाल होकर उसने एक वीरान ग्राम में एक छोटी सी झोंपड़ी में शरण ली। वहाँ वह अश्रुओं और अकेलेपन के साथ जीवन के बचे हुए दिन काट रही थी।

अब समय सही था और एक मानव उससे मिलने आया। उसने नर्तकी का सिर अपनी गोद में लिया। वह ज्वर से काँप रही थी। उस व्यक्ति ने उसके ज़ख्मों पर, चेहरे पर और सिर पर मलहम का लेप किया।

‘तुम कौन हो?’ उसने कमज़ोर आवाज़ में पूछा।

‘मैं उपगुप्त हूँ। क्या तुम्हें याद है? मैंने तुमसे वादा किया था। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। अब मैं तुम्हारा ख्याल रखने आया हूँ।’

‘अब मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ नहीं है।’ वह ज्वर से कराहने लगी।

‘नहीं,’ उसने कहा, ‘उस समय तुम्हारे पास देने के लिए जो था, वह अस्थिर था, ऐसा कुछ जिसे तुम स्वयं नहीं रख सकी। अब तुम्हारे पास देने के लिए जो कुछ है, वह असली है। मैं उससे प्रेम करता हूँ जो जाने वाला नहीं है। हमारा संबंध उसी के लिए है। यह आत्मा का संबंध है।’

‘विगत वर्षों के वैभव और अभिमान में तुमने अपने शरीर, सौंदर्य, धन और ऐय्याश मित्रों के जमघट - इन सभी के परिवर्तनशील स्वभाव को

नहीं पहचाना। वे सब तुम्हारे पास थे क्योंकि वैसी ज़रूरत थी। उन्होंने उसकी पूर्ति की और अब वह ज़रूरत खत्म हो चुकी है। मेरी आवश्यकता वह नहीं है। मेरी आत्मा की आवश्यकता ही मेरी आवश्यकता है।'

नर्तकी के गालों पर अश्रु बहने लगे। वह बिलखने लगी। उसका सारा अज्ञान उन अश्रुओं में धुल गया। उपगुप्त ने उसका खूब ख्याल रखा।

अब उपगुप्त ने कहा, 'चलो, अब हम उस तुच्छ 'मैं' से परे जाकर असली 'मैं' की अभिज्ञता पाने में दूसरों की मदद करें।'

नर्तकी जल्दी ही भली चंगी हो गई। जब वह फिर से सशक्त बन गई, उसने अपने पहले वाले जीवन का त्याग कर दिया। वह उपगुप्त की शिष्या बन गई। उसने अपने जीवन के बचे हुए दिन शांति से ध्यान करने में और दूसरों के साथ अपनी प्रज्ञा बाँटने में व्यतीत किए। . . .

जब हम अपने अंदर के उस असली 'मैं' को नहीं पहचानते हैं, तब हम निरंतर नकली 'मैं' को बनाए रखने की चेष्टा में लगे रहते हैं। नकली 'मैं' वह है जो समाज द्वारा, भावनाओं द्वारा और आवश्यकताओं द्वारा निर्मित किया गया है। यह वही है जिसे हम शरीर का 'मैं' कहते हैं, नाम का 'मैं' कहते हैं, आकार का 'मैं' कहते हैं। जब भी हमें इस सतही 'मैं' के प्रति कोई आपत्ति नज़र आती है, तब हम बेचैन, नाराज़ और हताश हो जाते हैं। हमारे अंदर भय का संचार हो जाता है। हम इस 'मैं' की रक्षा के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। मगर उसकी रक्षा नहीं हो सकती।

इस सतही 'मैं' का वास्तविक स्वभाव है परिवर्तनशील होना। इसीलिए वहाँ भय है। हमारे अंदर कोई जानता है कि इस 'मैं' में स्थायित्व का गुण नहीं है। यदि हम सतत परिवर्तनशील 'मैं' के साथ अपनी संपूर्ण पहचान बनाएँगे, तब हमारे पास वह निर्भयता नहीं आएगी जो हमारे अंदर के अपरिवर्तनशील के ज्ञान से उत्पन्न होती है।

इसके लिए हमें उस निर्भयता की आवश्यकता है। वह हमारे अंदर तभी आ सकती है जब हम वास्तविक 'मैं' और उसकी नित्यता को जान लेंगे, जब हम नित्य और अनित्य के बीच का अंतर जान लेंगे। उस वास्तविक 'मैं' को जानने से हम यह भी जान लेंगे कि वह कहीं नहीं जाने

वाला है। जब हम जान लेंगे कि वह कहीं नहीं जाएगा, तब हम उसे अपने पास रखने का प्रयत्न करना छोड़ देते हैं।

यह वैसा ही फर्क है जो एक मोमबत्ती और बिजली की बत्ती में है। खिड़की के पास मोमबत्ती हमेशा पवन के कारण टिमटिमाती रहती है, इसलिए आप उसे एक सुरक्षित आवरण से ढक देते हैं। यह तो उस अवास्तविक 'मैं' की तरह है जिसे हम निरंतर सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह जानते हुए भी कि उसकी सुरक्षा सदा सर्वदा के लिए नहीं की जा सकती है। अगर आपके पास एक बिजली की बत्ती है, तो आपको उसकी सुरक्षा करने की ज़रूरत नहीं है। आप इससे भयभीत नहीं हैं कि वह बुझ जाएगी। पवन उसे नहीं बुझा सकती। आपका वास्तविक 'मैं' ऐसा ही है, सभी परिस्थितियों में सुरक्षित।

यह सतही 'मैं' कहाँ से आता है? इसका सृजन कर्म, परंपरा और संप्रदाय के द्वारा होता है। यह सामाजिक 'मैं' है। भिन्न-भिन्न भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक नियमनों के कारण यह लोगों के बीच में दीवारें खड़ी करता है। आपका अवास्तविक 'मैं' किसी दूसरे के 'मैं' की तरह नहीं है क्योंकि जो आपके राष्ट्र, वंश व सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है, वह उसके लिए नहीं है। इसलिए हमारे मानसिक ढाँचे और भावनात्मक आवश्यकताएँ सापेक्ष हैं एवं जो सापेक्ष है, वह नित्य नहीं बन सकता।

इसीलिए ज्ञानीजन अपने मूल्यों को दूसरों पर थोपने की चेष्टा नहीं करते। वे वस्तुओं को वैसे ही देखते हैं जैसी वे वास्तव में हैं। वे सामाजिक 'मैं' और वास्तविक 'मैं' के बीच का अंतर समझते हैं। वे जानते हैं कि अनित्य 'मैं' उनके नियमनों और सामाजिक मूल्यों की उपज है। इससे आगे जाकर, वे देखते हैं कि कुछ तो ऊँचा चढ़ रहा है। यह उच्चतर 'मैं' किन्हीं स्थानीय या भौगोलिक सीमाओं से बँधा नहीं है। वह खोने के भय से भयभीत नहीं है। वह 'मैं' नित्य है, अमर है। वह 'मैं' आपके अंदर है। वह 'मैं' मेरे अंदर है। वह 'मैं' सभी के अंदर है।

आपका संबंध स्वयं के साथ शुरू होना चाहिए। पहले स्वयं के अंदर उस 'मैं' को देखिए, फिर आप उसे सभी में देखने लगेंगे। अगर आप

उस वास्तविक 'मैं' को स्वयं में नहीं देख सकते, तो आप उसे और किसी में नहीं देख सकेंगे।

उसे जानने के लिए समय निकालने का तात्पर्य यह नहीं है कि आप स्वार्थी हैं। उसका तात्पर्य है कि आप सर्वप्रथम स्वयं पर सत्य का प्रयोग करने के लिए तैयार हैं। फिर आप सभी के साथ उसे बाँट पाएँगे। किसी व्यक्ति को कोई गरम वस्तु देने से पहले, क्या आप पहले अपनी त्वचा पर उसकी परीक्षा नहीं करते हैं? उसी तरह, किसी दूसरे को सत्य देने से पहले, आप स्वयं उसकी अनुभूति करें।

ध्यान की इस रोशनी में स्वयं की वास्तविकता को समझें। बाहरी आवरणों को फेंक दें और आंतरिक सत्य को जानें। देखिए कि किस तरह आपने अब तक अपने चारों ओर एक कक्ष बना रखा था। अब आप जानना चाहते हैं कि अंदर क्या है। यदि आप स्वयं के सत्य के पास नहीं जाएँगे, तो आपका सारा जीवन ढकोसलों और सपनों के अलावा कुछ नहीं होगा। ऐसे सपनों में जीकर आप अपने उत्कर्ष के अंतिम सोपान तक नहीं पहुँच पाएँगे। इसलिए अगर आप आगे जाना चाहते हैं, तो खरे बनिए। शब्दों से परे जाइए और अनुभूति के सत्य तक आइए।

देखिए कि भले ही प्रतीत हो मानो परिवर्तन के साथ 'मैं' भी परिवर्तित हो रहा है, वास्तव में वह अपरिवर्तनशील है। जब लोग आपसे विदा होते हैं, या आप उनसे दूर जाते हैं, तब इस ज्ञान के साथ देखिए कि आप दोनों के अंदर कुछ तो है जो रहेगा, कुछ तो है जो फिर से मिलेगा। जैसे समझ गहरी होती जाती है, रिश्ते गहन बनने लगते हैं। ये सिर्फ शरीर के नहीं हैं, मगर सत्त्व से सुगंधित हैं।

अन्यथा, जीवन इतने भय और चिंताओं से घिरा हुआ है कि सहन करना मुश्किल है। अगर आप जान जाएँगे कि सत्त्व कभी नहीं खो सकता, आप अपने प्रियजन के विरह पर उदास होते हुए भी अपने काम में फिर से लग जाएँगे, अपनी दिनचर्या जारी रखेंगे और जीवन को पूरी तरह जिएँगे। यद्यपि लुप्त होने का आभास है, यह लुप्तता इसीलिए है ताकि और कहीं प्रकट हो सके। वहाँ आने के लिए आपको यहाँ से जाना होगा। सही रिश्तों में एक व्यक्ति दूसरे से आगे चला जाता है। दूसरा व्यक्ति उसके पीछे चलता

है। विरह अस्थायी है। फिर से मिलते हैं। यहाँ इस परिवर्तनशील का तात्पर्य उससे है जो मर नहीं सकता, क्योंकि उसका कभी जन्म नहीं हुआ, यही जीवन का यथार्थ है।

इस तरह ध्यान करते हुए हम विवेकशीलता और विशाल दृष्टि का विकास करते हैं। वे छोटी चीजें जो हमारे व्यसनों को बढ़ावा देती थीं, अब हमें तंग नहीं करतीं। अब अस्थायी चीजों को पाने के लिए हम इतनी ऊर्जा को व्यय नहीं करेंगे। हम दूसरों की गलतियों के प्रति उदार बन जाएँगे। हम सभी जीवों के साथ एकत्व की अनुभूति करेंगे और अनित्यता के उफान पर अश्रु नहीं बहाएँगे। अपनी आंतरिक दृष्टि से हम उसे देखेंगे जो सभी में जीवंत है, सभी को प्राण दे रहा है। अब हम आनंद की अनुभूति करेंगे।

### चिंतन के बिंदु

यदि हम सभी आकारों के परिवर्तनशील स्वभाव को नकारने के बजाय स्वीकार कर लेंगे, तो हम गहराई में जाकर अनुभूति कर सकते हैं कि सतत परिवर्तनशील के पीछे अपरिवर्तनशील जीवन है।

बदलाव विकास के लिए है, और विकास बदलाव के लिए। इन दोनों की मदद से हम अपनी आंतरिक दिव्यता से अभिज्ञ हो सकते हैं और उच्चतर जीवन की तरफ बढ़ने की प्रेरणा पा सकते हैं।

मुझे अपने चारों तरफ बुने हुए उस अस्थायी जाल को टिकाने का प्रयत्न छोड़ देना चाहिए ताकि मैं संपूर्ण जीवन के साथ संबंध बना सकूँ।

हमारे अंदर कुछ तो है जो रहेगा। वह प्रेम है, वह आत्मा से आत्मा का संबंध है।

प्रकट होना और ओझल होना, दोनों ही जीवन के खेल हैं। दोनों एक ही सागर की दो तरंगें हैं, दोनों सत्य को नूतन ढंग और ताजगी से प्रकट करने के लिए हैं।



## असुरक्षित संसार में स्वयं की सुरक्षा

जिस तरह शरीर को पोषण की आवश्यकता है, उसी तरह मन के पोषण के लिए भी हमें भोजन की आवश्यकता है। जब हमारे मन को उसका पोषण, यानी शुद्ध और सकारात्मक विचार नहीं मिलते हैं, तब वह कमजोर बन जाता है। और जिस तरह एक कमजोर शरीर किसी भी बीमारी का शिकार हो सकता है, उसी तरह एक कमजोर मन भी किसी भी प्रभाव का शिकार बन सकता है। वह ग्रहणशील बन जाता है और जहाँ भी जाता है, वहाँ के प्रभाव का रंग ग्रहण कर लेता है। उसका अपना कोई विशिष्ट चिंतन नहीं रहता।

एक कमजोर मन एक कमजोर शरीर से ज्यादा हानिकारक है। अगर किसी का शरीर कमजोर है, तो वह नज़र में आता है। विटामिन, उपयुक्त भोजन एवं योगासनों के द्वारा वह व्यक्ति शरीर को सशक्त बना सकता है। मगर जब मन कमजोर हो जाता है, तब वह इतनी आसानी से नज़र में नहीं आता।

अंततः मन की शक्ति ही शरीर को सशक्त बनाने में सहायक है, और ये दोनों मिलकर आत्मा को उसकी यात्रा पर अग्रसर करते हैं। इसीलिए इन बारह भावनाओं का निरूपण किया गया है - आत्मा के सफर में तन और मन का उपयोग करने के लिए, ध्यान के माध्यम से जो नित्य है, उसे उजागर करने के लिए, जीवन को उसकी वास्तविकता में देखने के लिए।

ध्यान का उपयोग अस्थायी वस्तुओं के लिए भी किया जा सकता है- धन संपत्ति पाने के लिए, सुखद संबंधों के लिए, कुशलता के एहसास के लिए। अगर आप यह भावनाएँ उन्हें देंगे जो सिर्फ 'अस्थायी' को चाहते हैं, तो वे उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। क्यों? क्योंकि वे गहराई में जाने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें तो वही चाहिए जिसे वे तुरंत प्राप्त कर सकते हैं।

हम शाश्वत की बात कर रहे हैं, दीर्घकाल तक बनी रहने वाली वस्तुओं की, जिसमें लोगों को अक्सर कोई रुचि नहीं है। जिनके अंदर

शाश्वत की चाह जगी नहीं है, वे सोचते हैं, 'कौन जानता है कि बाद में क्या होगा, पचास वर्ष बाद? मुझे अभी मज़ा लेने दो!'

इसीलिए उन दीक्षितों को, उन लोगों को जिन्हें वर्तमान में और आगामी जीवन में, या फिर यूँ कहें कि जीवन के बहाव में सच्ची दिलचस्पी है, उन्हें बारह चिंतन दिए जाते हैं। जिन्होंने हमें ये भावनाएँ दी हैं, उन्होंने जीवन की निरंतरता को देखा है, उसके अनंत प्रवाह का अनुभव किया है। उन्होंने जन्म से आरंभ नहीं किया, न ही मृत्यु पर बात खत्म की। उनके लिए जन्म एक तरंग है और मरण दूसरी तरंग। यदि आप पूछें, 'पहली तरंग कहाँ है', तो ज्ञानी कहेगा, 'वह दूसरी तरंग में निहित है। मुझे पहली तरंग दिखाओ और दूसरी तरंग देख लो। पहली तरंग ने दूसरी तरंग को जन्म दिया है।'

यदि आप पहली तरंग के अस्तित्व को जानना चाहते हैं, तो आपको दूसरी तरंग को जानना होगा। यदि पहली तरंग शांत न हुई, तो दूसरी तरंग नहीं आएगी। दूसरी तरंग के आने का तात्पर्य है कि पहली तरंग विलीन हो चुकी है। कोई वस्तु विलीन होती है और कोई अन्य वस्तु प्रकट हो जाती है। यह पूर्ण प्रक्रिया है - विलीन होना और प्रकट होना। इसलिए जन्म कुछ नहीं है, कहीं किसी का मरण ही है। एक तरंग मृत्यु में विलीन होती है एवं दूसरी जन्म में प्रकट हो जाती है।

ये दोनों तरंगें एक दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई हैं। जब हम इस गहन सत्य की, इस गहन अंतर्दृष्टि की अनुभूति करने लगेंगे, मात्र शब्दों और वाक्यों में नहीं, बल्कि हमारे वास्तविक अनुभव में, तब हम इस संसार में निर्भयता से जी सकेंगे। भले ही हम भय पर विजय पाने के कितने ही उपाय कर लें, लेकिन जब तक हम अनुभूति के बिना मात्र शब्दों के स्तर पर जीते रहेंगे, भय कायम रहेगा। लोग भयग्रस्त क्यों होते हैं? क्योंकि वे वस्तुओं को क्षय होते हुए, अदृश्य होते हुए देखते हैं। वे इस स्तर से परे नहीं गए हैं। इसलिए उनके दिमाग में भय हमेशा छाया रहता है।

यह ध्यान हमें शनै-शनैः एक अन्य अभिगम का अनुभव करने देता है, एक ऐसे स्थान का जहाँ भय नहीं है। यह कैसे संभव है? क्योंकि



अंतर्मन सभी नश्वरों के पीछे जो अनश्वर है, उसकी अनुभूति करने लगता है। वह दो तरंगों के परस्पर विलीनीकरण और उससे नई तरंग के प्रकटीकरण को देखने लगता है।

कोई कह सकता है, 'यह वस्तु अदृश्य हो गई है।' जिसने ध्यान किया है, वह उत्तर देगा, 'तुम अदृश्य होने की बात करते हो। क्या तुमने किसी वस्तु को प्रकट होते नहीं देखा? जो खो चुका है, उसे क्यों महत्त्व देते हो? जो पाया है, उसे क्यों नहीं देखते?' इसीलिए हमारे प्रथम ध्यान का विषय था वह अपरिवर्तनशील तत्त्व, जो परिवर्तनों के पीछे है। जिस संसार को आप देख रहे हैं, वह सतत चलायमान है। वह चलता रहा है, इसीलिए वह नवीन और ताज़ा है। लेकिन हमारा अज्ञानी मन इस परिवर्तन को नहीं चाहता। वस्तुएँ जैसी थीं, वह उनसे वैसे ही चिपके रहना चाहता है, उन्हें अपने पास रखना चाहता है। हर वस्तु को एक स्मारक में बदल देना मन की आदत है, उसे स्मारक बहुत प्रिय है।

जब आप नित्य और अनित्य के बीच का अंतर जान लेंगे, तब आप दूसरी भावना के लिए तैयार हैं - अशरण भावना यानी असुरक्षित स्थिति। उसके पार है शरण यानी सुरक्षा। साधक सोचता है, 'मैं हमेशा किसी शरण की, किसी मसीहे की खोज में हूँ। जब कोई मुझे रास्ता दिखा रहा है, मेरा ध्यान रखता है, तब मेरा मन शांत है। मगर अब मैं जान चुका हूँ कि जो मैं स्वयं के लिए नहीं कर सकता, कोई दूसरा मेरे लिए नहीं करेगा।' इस चिंतन से मुझे एक नवीन दृष्टि मिली है - निर्भर नहीं रहने की।

मानसिक निर्भरता हमारे अंदर बचपन से आ जाती है। अगर माँ चली गई, तो बच्चा रोता है। यह स्वाभाविक है। मगर पचास-साठ वर्ष की उम्र के लोग भी बच्चों की तरह रोते हैं जब उनकी माँ चली जाती है। क्यों? क्योंकि उनके अंदर उस लाचारी का एहसास हमेशा रहता है। वे अपने पैरों पर खड़े होने के लिए तैयार नहीं हैं।

जब आप देखते हैं कि जिस पर आप टिके हुए थे, वही फिसल रहा है, तब भय को बढ़ते हुए देखिए। यह देखिए कि वह किस तरह आप पर

हावी हो जाता है। इस चिंतन से हम समझ सकते हैं कि किस तरह अन्य व्यक्ति और वस्तुएँ भी अपने आप में लाचार हैं। वे आपकी मदद कैसे कर सकते हैं जब वे खुद लाचार हैं?

वास्तविकता में जब तक आपके पास शुभ कर्म हैं, तब तक ही व्यक्ति या वस्तु आप के साथ रहेंगे। आप उनके साथ चिपके रहने के लिए सौ से अधिक उपाय जुटा सकते हैं, मगर जब कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब वे चले जाएँगे। अगर आप इस सत्य को देखने के लिए तैयार नहीं हैं, तो आप पूरी तरह धराशायी हो सकते हैं। आप जान जाएँगे कि वह तो एक टिकाव या सहारा था, मात्र एक बैसाखी। जब आप किसी सहारे या बैसाखी पर पूरी तरह टिकने लगते हैं, तब उसके टूटने पर क्या होता है? आप गिरने लगते हैं, बिखरने लगते हैं। बात अपने आंतरिक मांसल को सशक्त बनाने की है। सही तरह से किया हुआ ध्यान आपको गहन शक्ति देगा। आपका आंतरिक बल बढ़ने लगेगा।

इसका यह अर्थ नहीं कि आप कभी किसी की सहायता न लें। अर्थ सिर्फ़ यही है कि उस पर निर्भर न रहें। अगर कोई सहायता मिले, तो उसे लें, धन्यवाद दें और आभार प्रकट करें। फर्क यह है – अगर आप निर्भर नहीं करते रहते हैं और सहायता नहीं मिले, तो कोई बात नहीं। मगर जब आप निर्भर रहते हैं, तो आप सहायता की प्रतीक्षा करते हैं और अपनी उम्मीद बढ़ाते रहते हैं। फिर जब उम्मीद पूरी नहीं होती है, तब आप भय और घबराहट का एहसास करते हैं, ‘अब क्या होगा? अब मेरा कौन है?’

अशरण भावना को उजागर करने के लिए जैन परंपरा में एक युवा संत की अर्थपूर्ण कहानी है। एक सुहावनी सुबह में वह एक वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन थे। उस समय वहाँ के राजा थे बिंबसार, जो युवा थे और अति सुंदर थे। वे अभिमानी भी थे क्योंकि न तो धर्म को जानते थे, न अध्यात्म को, न ही आंतरिक जीवन को। बस, अपनी युवा शक्ति और समृद्धि पर उन्हें बहुत नाज़ था। वे मगध के सबसे शक्तिशाली राजा थे, जिसे अब बिहार के नाम से जाना जाता है। उस दिन सुबह जब बिंबसार अपने अश्व पर सैर कर रहे थे, वन में पक्षी चहचहा रहे थे, फूल कुसुमित हो रहे थे एवं प्रकृति अपने संपूर्ण सौंदर्य में थी।

सैर करते हुए उन्होंने वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ संत को देखा और सोचने लगे 'यह युवक यहाँ बैठकर ध्यान क्यों कर रहा है? शायद गरीबी में डूबा हुआ है। मुझे इसकी मदद करनी चाहिए।' उन्होंने पुकारा, 'युवक, क्या कर रहे हो? तुम तो एक भिक्षुक नज़र आते हो।'

'हाँ महाराज,' युवा संत ने जवाब दिया।

'तुम्हारा नाम क्या है?' राजा ने पूछा।

'मेरा नाम है अनाथ, यानी असुरक्षित। मैं बिना किसी सुरक्षा के हूँ।'

राजा अवाक रह गए। 'जब मेरे जैसा राजा इस पूरे प्रदेश का नाथ है, तब तुम स्वयं को अनाथ कैसे कह सकते हो?'

'महाराज', संत ने जवाब दिया, 'क्या मैं अपनी कहानी सुनाऊँ? क्या आपके पास समय है?'

'हाँ', राजा ने आतुरता से कहा। 'मैं तुम्हारी कहानी सुनना चाहता हूँ।'

उसने अपनी कहानी शुरू की, 'यह तब की बात है जब मैं एक युवक था। मेरे पास सब कुछ था - एक सुंदर पत्नी, बहुत बड़ा परिवार, वैभवपूर्ण कोठी, बेशुमार दौलत, अन्न और गहने। सभी मुझे चाहते थे। तब मैं यौवन की पराकाष्ठा पर था। मैं इतना अहंकारी बन गया था कि मैं नीचे नहीं देखता था। मुझे लगता था मानो सारा संसार मेरे चरणों में है।

'यह अहंकार मेरे अंदर बढ़ता चला गया। फलस्वरूप, मैं दूसरों के साथ इस तरह पेश आने लगा मानो उनकी कोई औकात ही नहीं है।

'फिर एक दिन मैं बगीचे में सैर करने के पश्चात् घर आया, थोड़ी बेचैनी महसूस कर रहा था। सरदर्द होने लगा और ज्वर बढ़ने लगा। शाम ढलते-ढलते मैं बिस्तर में पड़ गया। मेरे पूरे शरीर में कंपन होने लगी। मेरी माँ जो मुझसे बहुत प्यार करती थी, चिंतित होकर बोली -वत्स, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकती हूँ? मैं लाचार महसूस कर रही हूँ। मुझे कुछ लेकर आने दो।

‘चिकित्सक आए, जड़ी-बूटी वाले आए, मगर कुछ भी असर नहीं हुआ।

‘यहाँ पर मेरा ख्याल रखने के लिए इतने सारे लोग थे, मगर वे मेरी रक्षा नहीं कर सके। शरीर का रोम-रोम अग्नि की तरह जल रहा था। मैं रो रहा था। महाराज बिंबसार, मेरी कहानी सुनिए! मैं इतना लाचार था! मेरी अर्धांगिनी, जो मुझे हृदय से चाहती थी, उसने मेरे शरीर को शीतल करने के लिए चंदन का लेप तैयार करके लगाया। मगर जैसे ही लेप सूखने लगा, जलन बढ़ने लगी। इसलिए हर दो, तीन, चार घंटे में लेप लगता रहा। मगर बार-बार लगाने से उससे ठंड लगने लगी।

‘महाराज, क्या आप मेरा विश्वास करेंगे? इक्कीस दिन के अंदर ही मैं अस्थि-पंजर मात्र बन गया, न ही कोई भोजन या दवाई पचा सका। तब मैंने सोचा कि मैं क्या करूँ? मैं बुरी तरह घबरा गया, आसपास मेरी पत्नी, माँ और नौकरों की उपस्थिति के बावजूद मैं बिस्तर में अकेला था। न कोई शरण, न ही कोई सहारा।

‘तब मेरे दिमाग में एक विचार उठा। एक बार जब मैं अपने अश्व पर कहीं जा रहा था, तब मैंने महाश्रमण महावीर की वाणी सुनी। वे कह रहे थे - जब तुम बेसहारा हो जाओ और कहीं सुरक्षा नज़र नहीं आए, तब इन चार पावन तत्त्वों की सुरक्षा स्वीकार करो : अरिहंत - जिन्होंने अपनी आंतरिक कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर ली है; सिद्ध - पूर्ण आत्माएँ; साधु - सारे संत जिनकी ऊर्जा से इस विश्व में स्पंदन हो रहा है; धर्म - वह पावन शिक्षा जो ज्ञानी पुरुषों से मिलती है। पावन एहसास के साथ उनकी तरफ बढ़ो। जब कहीं कोई शरण न हो, तब इन चारों की शरण में आ जाओ।

‘यह विचार मेरे मन की तरफ बहने लगा। मैंने सोचा - आज जब मेरी रक्षा करने के लिए कोई नहीं है, मैं पूर्ण रूप से स्वयं को इनके प्रति समर्पित कर दूँ। मेरा मन उन पावन शब्दों को बार-बार स्मरण करने में इतना लीन हो गया कि मेरे शरीर में ऊर्जा समाने लगी।

‘ठीक मध्य रात्रि के समय मेरी आँखें इतनी शांत और स्वच्छ हो गईं कि मैं सारी रात शांति से सो सका। सवेरे जब मेरी पत्नी ने मुझे देखा, तब उसने सोचा कि रात को उसने विशेष रूप से चंदन का लेप लगाया और उसका काफी असर हुआ है। चिकित्सक ने सोचा कि उसकी दवाई अब काम कर रही है। वैद्य ने सोचा कि उसकी जड़ी-बूटियों का रस असर ला रहा है। सभी मेरे स्वस्थ होने का श्रेय लेना चाहते थे।

‘दोपहर को जब मैंने आँखें खोली, सभी मुझसे अपने-अपने विचार कहने लगे। मैंने उनसे कहा - आप लोगों ने मेरे लिए जो भी कुछ किया, उसके लिए मैं आभारी हूँ। आपके ध्यान, सहयोग एवं भावनाओं की मैं कद्र करता हूँ। मगर मुझे सत्य कहने दीजिए। जब इस संसार में कोई असुरक्षित हो जाता है, तब भी एक शरण उसे प्राप्त है - उसकी ऊर्ध्व आत्मा।

‘मैं उस अदृश्य आंतरिक शक्ति के साथ जुड़ने लगा जो सदा से है, एवं अंततः मैं उसके साथ लयबद्ध हो गया। मेरा मन जो विचारों के झंझावात की सृष्टि कर रहा था, शांत हो गया। शांति की उस स्थिति में, मैं उस पावन अवस्था से जुड़ गया और सोचने लगा, ‘मैं उन सभी पावन आत्माओं की शरण लेता हूँ जो पूर्ण चेतन हैं। मैं उनकी ऊर्जा के साथ जुड़ता हूँ। विश्व के संत जहाँ भी हैं, मैं उनके साथ एक होता हूँ। मैं धर्म की उस शिक्षा में लीन होता हूँ जो सिद्ध पुरुषों की करुणा, प्रेम और गहन आंतरिक शांति से उत्पन्न होती हुई है। वह विचार औषधि में बदल गया। वह मेरी चेतना के लिए एक शांत लेप बन गया।’

तब बिंबसार ने पूछा, ‘उसके बाद आपने क्या किया?’

संत ने आगे कहा, ‘जब मैं ठीक हो गया, तब मैंने अन्य पथ अपनाने का निश्चय किया। मैंने अपने ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का त्याग कर दिया। अब मैं अशरण के पथ पर हूँ। इसीलिए मैं अनाथ हूँ, बिना किसी सांसारिक शरण या गुरु के। अगर आप मेरे आध्यात्मिक गुरु को जानना चाहते हैं, तो वे हैं अरिहंत महावीर।’

अब राजा ने पूछा, 'महावीर कौन हैं?'

'महाराज, यहाँ से पंद्रह मील की दूरी पर आपकी राजगृही नगरी में वे एक अति सुंदर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वहाँ जाइए और अपने आप देखिए।'

उस युवा संत की बातों से प्रभावित होकर बिंबसार महावीर के पास गए और उसी समय उनके अनुयायी बन गए। वह उनके संरक्षक भी बन गए और अपने संपूर्ण जीवन के दौरान उन्होंने महावीर के साथ-साथ बुद्ध को भी सहयोग दिया जो उस समय उनके राज्य में निवास करने और शिक्षा देने आए थे। बिंबसार ने अपने जीवन को उनकी शिक्षा और नेक कार्यों के प्रचार-प्रसार में लगा दिया क्योंकि उन्हें लगा कि यही उनके जीवन का ध्येय है।

जब हम अशरण पर चिंतन करते हैं, तब हम एक अनूठे सोपान की समझ को पा लेते हैं। हम देखते हैं कि सच्ची सहायता चेतन के पावन स्रोत से मिलती है। वह एक ऐसा प्रवाह है जो हमेशा बहता रहता है। हमें तो सिर्फ पर्दा हटाना है और स्वयं को उस ऊर्जा के प्रति जागरूक कर देना है जिसका स्वभाव है- अनंत ज्ञान, अनंत आनंद और अनंत दर्शन। जीवन से जुड़ने के लिए हमें सिर्फ अपने चेतन को अंतर की तरफ मोड़ना है। वही हमारी शरण है, हमारी खुशहाली, हमारी स्थायी संपत्ति, हमारा अदृश्य शरणागत जो कभी खत्म नहीं होगा।

अगर आप इस स्रोत के साथ एकात्म हो रहे हैं, तो आप असुरक्षित नहीं हैं, लाचार नहीं हैं क्योंकि आप अंदर से सुरक्षित हैं। जैसे ही आप इस सुरक्षा को जानने लगेंगे, आप स्वयं को ऊपर उठाने लगेंगे। डूबती हुई नाव फिर से तैरने लगेगी।

युवा संत अनाथ और महाराज बिंबसार की तरह इस ध्यान का उपयोग करें। आत्म-निरीक्षण और चिंतन के लिए समय रखिए। जब भी भय आए, पूछिए, 'मैं क्यों भयभीत हूँ? यह घबराहट क्यों है? भय का

कारण क्या है? बस एक ही कारण है कि मैं अपने अदृश्य संसार से जुड़ा हुआ नहीं हूँ।

उस अदृश्य संसार के स्पंदन से जुड़कर अपनी आंतरिक शक्ति को बढ़ाइए। इस संपूर्ण मंत्र को प्रकट में कहें या शांति से सुनें।

चत्तारि मंगलं	: यह चार मंगल हैं।
अरिहंता मंगलं	: अरिहंत (आंतरिक शत्रुओं को जीतने वाले) मंगल हैं।
सिद्धा मंगलं	: सिद्ध (पूर्ण आत्माएँ) मंगल हैं।
साहु मंगलं	: साधु मंगल हैं।
केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं	: केवली प्रतिपादित धर्म मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा	: ये चार सर्वोच्च हैं।
अरिहंता लोगुत्तमा	: अरिहंत सर्वोच्च हैं।
सिद्धा लोगुत्तमा	: सिद्ध सर्वोच्च हैं।
साहु लोगुत्तमा	: साधु सर्वोच्च हैं।
केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा	: केवली प्रतिपादित धर्म सर्वोच्च है।
चत्तारि सरणं पवज्जामि	: ये चार शरण हैं।
अरिहंते सरणं पवज्जामि	: अरिहंत का शरण लूँ।
सिद्धे सरणं पवज्जामि	: सिद्ध का शरण लूँ।
साहु सरणं पवज्जामि	: साधु का शरण लूँ।
केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि	: केवली प्रतिपादित धर्म, यानी अहिंसा, शांति, प्रेम और करुणा की शरण लूँ।

जब आपकी क्षुद्र आत्मा इन चार शरणों में लीन हो जाएगी, तब आपकी ऊर्ध्व आत्मा यानी आपका सत्य उभरने लगेगा।

### चिंतन के बिंदु

मैं अपनी अशरण अवस्था को पहचाने लगा हूँ। एक-एक करके मैं देख रहा हूँ कि जिन वस्तुओं और व्यक्तियों पर मैं निर्भर था, वे अपने आप में लाचार हैं।

मुझे अपनी चेतना को इन अनित्य निर्भरताओं से हटाकर जीवन के पावन प्रवाह के साथ जोड़ना है जो निरंतर है। उस चेतना के साथ जुड़कर मुझे अपना नित्य शरण, अपना आंतरिक संसार मिलेगा।

मुझे जीवन की अनंतता, उस अनंत प्रवाह की अनुभूति करनी चाहिए। एक लहर के उठाव का अर्थ है दूसरी लहर का गिरना। जन्म और कुछ नहीं है, कहीं एक मरण ही है। यही प्रक्रिया है - कुछ विलीन होता है ताकि कुछ प्रकट हो सके।





## जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति

अपने हृदय में सत्य की जगह बनाने के लिए हमें मिथ्या विचारों के कचरे को साफ करना होगा। उसके लिए हमें मार्ग दर्शन की, अनुप्रेक्षाओं की आवश्यकता है। अंतरावलोकन से हम उसे देख सकते हैं जो सत्य है, खरा है, नित्य है। आंतरिक दृष्टि का उपयोग करके हम विकृत सोच के स्वामित्व से बाहर निकल सकते हैं।

हम कल्पना के संसार में क्यों रहते हैं? हम सपनों के महल क्यों बनाते हैं? भय से स्वयं की रक्षा करने के लिए। हम भयभीत क्यों हैं? क्योंकि हमारे भीतर कुछ है जो जानता है कि मन कमजोर है और बिखरना उसकी प्रकृति है। मन एक विषय से दूसरे विषय की ओर, एक आकार से दूसरे आकार की ओर कूदता रहता है। हमारा अचेतन मन अपने क्षय होने से भयभीत है।

क्षय होने से, खंडित होने से बचने के लिए मन संरक्षण ढूँढ़ता है—पति और पत्नी में, प्रियतम और प्रेमी में, पिता और रक्षक में। सुरक्षा के इस झूठे एहसास में वह आश्वस्त हो जाता है। उसे यह एहसास नहीं है कि इस तरह का बाहरी संरक्षण सिर्फ एक आड़ है। सुरक्षा की खोज में हम अपने चारों तरफ एक घेरा बनाते हैं। इस घेरे को हम प्रेम कह सकते हैं, मगर वास्तविकता में यह सिर्फ आसक्ति या मोह है। यह कागज के समान पतले और कमजोर प्रेम के खूबसूरत बाहरी आवरण से ढककर सजाया हुआ मोह है।

हर व्यक्ति के जीवन में ऐसा समय आता है जब मन ताश के महल की तरह बिखर जाता है। वह तब तक ही टिका हुआ रहता है जब तक हवा का एक झोंका उसे उड़ा नहीं देता। जब संकट की घड़ी आती है, तब मन टूटने लगता है। आप नैराश्य, तिरस्कार एवं अकेलेपन का एहसास करने लगते हैं। जिंदगी अंधकारपूर्ण, निरर्थक और निराशाजनक नज़र आने लगती है।

ज्ञानीजन जानते हैं कि झूठे और बाहरी आधार से जो सुरक्षा बनाई गई है, वह टिक नहीं सकती। इस तरह का आश्रय बहुत कमजोर है। जब आप फिर से खुले मैदान में निर्वस्त्र खड़े होंगे, सिर के ऊपर बिना किसी छत के, तब क्या करेंगे?

इसीलिए हम भावनाओं पर चिंतन करते हैं। हम अभिज्ञता से अपनी आंतरिक शक्ति बढ़ाते हैं। जिस तरह एक खिलाड़ी अपने स्नायुओं को वजन उठाकर सशक्त बनाता है, उसी तरह हम खास औजारों के द्वारा अपनी आंतरिक शक्ति को बढ़ाते हैं। ये औजार हैं अनुप्रेक्षा, जिन्हें भावनाएँ भी कहते हैं, सार्थक शब्द और अंतर्दृष्टियाँ।

आप अपने आप को तैयार करते हैं कि अकेले कैसे खड़े रहें। जब आप अकेले खड़े रहना जान जाते हैं, तब आप पूर्ण रूप से एक हो जाते हैं। आपको इस पूर्ण-एकत्व का अर्थ जानने के लिए सिर्फ अपने अकेलेपन की गहराई में जाना है।

हर कोई ऐसा करने के लिए तैयार नहीं है। ये पहलू सिर्फ उन्हीं को दिए जाते हैं जो तैयार हैं। सत्य चकाचौंध करने वाला है। उसमें इतना तेज है कि कमजोर आँखें उसे झेल नहीं पाती। उसके तेज के आगे कमजोर आँखों वाले मुड़कर दिशा बदल लेते हैं या गहरे चश्मे से अपनी आँखों को ढक लेते हैं।

मगर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो सत्य को देखना चाहते हैं। वे कहते हैं, 'हमें किसी भी हाल में सत्य को जानना है।' अंततः जो पहले कड़वा प्रतीत हो रहा था, वह मीठा शहद निकला। जैसे-जैसे आप अपनी आंतरिक शक्ति बढ़ाएँगे, तब बिना सहारे के भी नीचे नहीं लुढ़केंगे।

जो सत्य देखने को उत्सुक हैं, वे प्रेम और मोह के बीच के फर्क पर चिंतन करते हैं। चिंतन करते हुए वे देखते हैं कि मोह हमेशा किसी किन्हीं माँगों या शर्तों के साथ आता है। जो स्थिर खड़े रहना जानते हैं, वे इसे देख सकते हैं। अपनी अंतर्दृष्टि का उपयोग करके वे स्वयं से पूछते हैं, 'जिसे मैं प्रेम कहता हूँ, क्या वह सिर्फ सुंदर शब्दों में बँधा हुआ मोह है? जिससे मैं

प्रेम करता हूँ, क्या मैं उससे कोई माँग कर रहा हूँ? क्या यह कोई सौदा है? क्या यह एक व्यवसाय है?’

जब हम प्रेम को व्यवसाय की श्रेणी में डाल देते हैं, तब वह प्रेम नहीं रहता। व्यापार में हम देखते हैं कि नफा कहाँ मिलेगा? वहाँ देने की, समर्पण करने की या स्वीकार करने की कोई भावना नहीं है। जिसे ज्यादा नफा मिल रहा है, बस उसी से मतलब है। दोनों पक्ष सिर्फ स्वयं के स्वार्थ का विचार करते रहते हैं। अगर रिश्तों में यही सत्य है, तो क्या हम स्वयं को भ्रमित नहीं कर रहे हैं?

जब आप इस सत्य को जानने लगेंगे, आप अपने रिश्तों को समझ लेते हैं। आपकी अभिज्ञता बदलने लगती है। आपकी दृष्टि बदल जाती है। आप जान लेते हैं कि किस तरह कुछ दूरी और कुछ जगह देनी चाहिए। रिश्ते और अधिक मीठे बन जाते हैं, अधिक अर्थपूर्ण। फिर दूसरा पक्ष आपसे सीखने लगता है। प्रेम विशाल है। जब आप उस विशालता का समावेश करेंगे, तब आप सबसे प्रेम करने लगेंगे। जब आप सबसे प्रेम करेंगे, तब आप जिससे प्रेम करते हैं, उससे सच्चा प्रेम करेंगे।

यह रातों रात होने वाली बात नहीं है। यह एक मंद प्रक्रिया है, एक उत्तरोत्तर उन्नति, न कि एक झटपट जवाब या अल्प समय की संतुष्टि। आपको धैर्य की आवश्यकता है। मेरे गुरु ने मुझसे कहा था, ‘पहले तुम्हें सीखना होगा कि वास्तविकता के धरातल पर, सत्य पर कैसे खड़े रहें। उस धरातल का कोई पथ नहीं है। तुम्हें अपना मार्ग स्वयं बनाना है। एक विशाल क्षेत्र तुम्हारे सम्मुख है। सारी दिशाएँ खुली हैं। इसलिए चले हुए पथ पर मत चलो। उससे तुम एक गंदले रास्ते में फँस जाओगे। ताज़ी खुली जमीन में अपना मार्ग बनाओ। तब तुम एक नया पथ बनाओगे, नवीन कदम रखोगे।’

नवीनता का एहसास कीजिए। स्वयं से कहिए, ‘मैं अपनी अंतर्दृष्टि के आधार पर हर कदम रखता हूँ।’ आप ऐसा कर सकेंगे जब आपको अपने कदमों पर श्रद्धा होगी और अपनी शक्ति में विश्वास। . . .

तीसरा पहलू जिसपर हमें चिंतन करना है, वह है संसार, जिसका अर्थ है निरंतर ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर आते-जाते रहना, एक परिष्कृत और लयपूर्ण गति में किसी वृहत् चक्र की तरह। यह एक निरंतर प्रक्रिया है। जब कोई व्यक्ति सुख और स्वामित्व के लोभ से वशीभूत हो जाता है, तब वह एक अविरल गति में फँसकर वहीं पहुँचता है जहाँ से वह निकला था, घाणी के चारों ओर घूमते हुए बैल की तरह। मगर जिसे जीवन की उद्देश्यपूर्ण दिशा का ज्ञान है, वह पहिये के हर घुमाव के साथ प्रगति की तरफ अग्रसर हो सकता है, स्वयं को ऐसी वस्तुओं के पीछे भागने से रोक सकता है जो क्षणभंगुर हैं। इसलिए जो एक के बंधन का कारण है, वह दूसरे की मुक्ति का कारण बन सकता है। यह तो हर व्यक्ति की समझ और दृष्टिकोण पर निर्भर है। अतः यह भावना साधक को सिखाती है कि वह जीवन के वृहत् चक्र को देखता रहे, मगर उसके साथ अपनी पहचान नहीं बनाए।

हम सभी ने उन सफल और मशहूर परिवारों के बारे में सुना है जिनके बच्चों ने सब कुछ खो दिया और जो भुलाए जा चुके हैं। हमने यह भी देखा है कि जो इस सांसारिक मापदंड के अनुसार 'कुछ' नहीं थे, वे 'कुछ' बन गए। चक्र हमेशा घूमता रहता है। यह एक अंतहीन प्रक्रिया है। कुछ दिन ऐसे होते हैं जब हमारा जीवन स्वर्ग के समान होता है, और कुछ दिन ऐसे होते हैं जब सब कुछ नरक के समान लगने लगता है। जिस व्यक्ति से आप सवेरे मिलते हैं, वह शाम तक वैसा ही नहीं रहता। मनोवेगों के कारण हमारे स्वभाव में कितने बदलाव आते रहते हैं!

इसलिए नवदीक्षित चक्र को देखते रहते हैं। वे देखते हैं कि जो नीचे है, वह नीचे नहीं रहेगा। वह ऊपर जाएगा, वह निरंतर जाता रहेगा। इस तरह अवलोकन करते हुए दीक्षित सीखता है कि ऊँच-नीच को गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। 'यह चक्र घूम रहा है, मैं नहीं,' वह देखता है। 'मैं उसी आसन पर बैठा हूँ। जो ऊपर और नीचे जा रहा है, वह तो चक्र है। मैं यहीं हूँ - स्थिर।'

जब आपको यह अनुभूति होने लगेगी, तब आप जीवन के खेल को देखने लगेंगे। वह गंभीरता, वह उपेक्षा - जो बादल आपकी आंतरिक शांति

को ढक रहे थे, वे चले जाएँगे और आप जीवन का आनंद लेने लगेंगे। आप जिसके साथ भी होंगे और जहाँ भी होंगे, आनंद की अनुभूति करेंगे।

इस तरह आप स्वयं को संसार के ऊँच और नीच से पृथक् देखने लगेंगे। चक्र हमेशा निर्विघ्न घूमता रहता है, बदलाव लाने के लिए। अपनी अभिज्ञता से आप देखने लगेंगे कि वह किस तरह उद्देश्यपूर्वक बढ़ रहा है, आपके लिए कुछ सुंदर, कुछ नूतन लाने के लिए। जीवन का चक्र आपको चुनौती दे रहा है। बदलाव के बिना जीवन गंदला बन जाएगा। जहाँ परीक्षा नहीं है, वहाँ विकास नहीं होता।

अस्थिर की भूमिका में जो स्थिर है, उसके साथ पहचान बनाने से आप दोनों से परे जा रहे हैं। इस तरह आप संसार के ध्येय का अनुभव करते हैं - निम्न से उच्चतर बनकर स्वयं को परिवर्तित करना, अंततः मोक्ष तक पहुँचकर जन्म और मरण के चक्र से मुक्त हो जाना।

इस भावना पर चिंतन करने से हम अपने संपूर्ण चक्र को देखते हैं। हम कहते हैं, 'जब मेरा जन्म हुआ, मेरी माँ दर्द से कराह रही थी। फिर उसने मेरा चेहरा देखा और खुश हो गई। दर्द चला गया।' जिस दर्द को माँ ने नौ महीने तक सहन किया, वह एक पल में चला गया। साथ ही, हम उन सभी को देखते हैं जो हमारे जीवन के निकट हैं - भाई-बहन, माता-पिता या जीवन साथी - और देखते ही देखते कुछ चले गए और कुछ यहीं हैं। वे लोग जिनसे हम अत्यधिक प्रेम करते हैं और जो हमसे प्रेम करते हैं, आते हैं और जाते हैं। वे हमेशा यहाँ नहीं रहते। जो हमसे घृणा करते हैं और जिनसे हम घृणा करते हैं, वे भी आते हैं और जाते हैं। यही वृहत् चक्र है, यही प्रक्रिया है।

चिंतन इस तरह आगे बढ़ता है: 'मैं दूसरों के बारे में ही क्यों सोचता हूँ? मैं भी चला जाऊँगा। जब मैं जाऊँगा, तब मैं भी उसी तरह दूसरों से अलग हो जाऊँगा जिस तरह वे मुझसे अलग हुए हैं। ऐसे में दूसरों के जाने पर मैं उदास क्यों हूँ? एक दिन मैं भी चला जाऊँगा। शायद मैं उसके बारे में नहीं सोचता हूँ क्योंकि उससे मुझे मानसिक भय होने लगता है।'

मगर सच्चा साधक भयभीत नहीं होता। अपने प्रस्थान के बारे में सोचते हुए उसके मन में पीड़ा नहीं होती। क्यों? क्योंकि वह पूर्ण रूप से समझ चुका है कि जो नित्य है, वह अनित्य नहीं होगा, एवं जो अनित्य है, वह नित्य नहीं होगा। हरेक का अपना-अपना स्वभाव है। साधक जानता है, 'जो मेरे भीतर है, सिर्फ वही नित्य है। सिर्फ मेरा निवास, स्थान, बाहरी वेशभूषा, आकार बदलते जाएँगे। ये सभी मुखौटे हैं, मगर वह एकभूत ज्वाला जो मैं हूँ, वह नहीं बदलेगा।'

इसे जानने से कितना आत्मविश्वास मिलता है! जब ऐसा होता है, तब आप पहली बार घुन और अनाज का फर्क समझते हैं। आप देखते हैं कि किस तरह घुन और अनाज को आपने एक समझ लिया है। आप देखते हैं कि किस तरह आपने अपने मित्रों को इस स्थैतिक रोशनी में देखा है - उनके सत्त्व को देखने के बजाय सिर्फ उनकी छवि को देखा है।

अगर हम व्यक्ति की छवि के साथ रिश्ता बनाएँगे, तो वह मित्रता खोखली होगी। वह भौतिक लाभ पर आधारित है। जिस व्यक्ति के पास आध्यात्मिक दृष्टि है, वह वस्तुओं को अलग दृष्टिकोण से देखता है। वह देखता है कि जिन वस्तुओं को उसने इतना मूल्यवान समझा था, वे वास्तव में मूल्यवान नहीं हैं। वे सिर्फ किसी काल में किसी स्थान में उपयोग करने के साधन थे। अगर आप रूस में घूमने का टिकट खरीदेंगे, तो यहाँ भारत में उसका उपयोग नहीं हो सकेगा। उसका उपयोग सिर्फ वहीं हो सकता है। इसी तरह संसार की वस्तुएँ उन टिकटों के समान हैं। वे सिर्फ आपको एक जगह से दूसरी जगह ले जाती हैं। उसके आगे उनमें कोई सार्थकता नहीं है।

आध्यात्मिक स्तर पर आधारित मित्रता स्थायी रहती है। क्यों? क्योंकि उसमें एक आंतरिक संबंध है, बाहरी संबंध से परे और आगे। एक लालची बूढ़ा था जिसने अपने गहनों और सोने के सिक्कों को अपने घर में छिपा रखा था। उसके गाँव में एक ज्वालामुखी का विस्फोट होने वाला था। प्राण बचाने के लिए भी समय नहीं था। मगर फिर भी अपने गहनों की पिटारी लाने के लिए वह वापस गया। पिटारी बहुत भारी थी। उसका एक ही बेटा था जो उससे भी ज्यादा लालची था। बेटे ने कहा 'पिताजी, मुझे यह

पिटारी दीजिए। यह बहुत भारी है, इसलिए इसे उठाकर आप जल्दी नहीं भाग पाएँगे।’

बूढ़े आदमी ने उन अंतिम क्षणों में भी अपने बेटे पर विश्वास नहीं किया। बेटे को गुस्सा आया और उसने अपने पिता को एक लकड़ी से मारकर पिटारी खींची और भाग गया। उसी क्षण ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ और सारा गाँव वहीं दब गया, बाप और बेटे भी। उनका रिश्ता सतही था, सिर्फ आवश्यकता और लालच पर आधारित। वे एक दूसरे की रक्षा सिर्फ कुछ पाने की उम्मीद में कर रहे थे। . . .

इसलिए द्रष्टा बनें। देखिए किस तरह अमीर गरीब बन जाते हैं, बच्चे बूढ़े हो जाते हैं और महान तुच्छ बन जाते हैं। इसे देखने में आनंद मिलता है। गहना बदल जाता है, मगर स्वर्ण वैसा ही रहता है।

अपने स्वरूप को देखिए। वह सुंदर है। देखिए कि आपके भीतर कौन है जो इन सब को साँस दे रहा है? कौन शरीर को एहसास दे रहा है जिससे वह अनुभव कर रहा है? कौन गले को आवाज़ दे रहा है और ज़बान को स्वाद? कौन नासिका को गंध की अनुभूति दे रहा है? कौन आँखों को रोशनी और दृष्टि, एवं कानों को श्रवण शक्ति दे रहा है? कौन मन को अभिज्ञता दे रहा है? जब आपको अनुभूति होगी कि आप ही इन इंद्रियों को जान दे रहे हैं, तब आप झूठे विश्वास और बाहरी आश्रयों को स्वीकार नहीं करेंगे। आप अपने मन के दरबान को समझा देंगे कि द्वार खोलकर आपको अंदर आने दे ताकि आप स्वयं की वास्तविकता को देख सकें। जब आप स्वयं के इस अपरिवर्तनशील केन्द्र को देखेंगे, तब आप चौंक पड़ेंगे, ‘वह सत्य यहाँ है! वह सत्य मैं हूँ!’

इस तरह अब आप परिधि को मध्य से देखते हैं। आप जीवन को उस कोण से देखते हैं जो सारे कोणों का द्रष्टा है। आप माध्यस्थ भाव में आ जाते हैं। आप चक्र के प्रत्येक घुमाव से जकड़े हुए नहीं हैं। इस तरह आप मुक्त हैं, अतीत के उन कर्मों से नहीं जो संसार के चक्र में निरंतर घूमते रहते हैं, मगर उस अज्ञान से जिसके कारण आप अतीत में बदलते तत्त्वों से जकड़े हुए थे। अब आप अपने स्वभाव के बदलाव से मुक्त हैं। आप वास्तविक मुक्ति के दर्शन करते हैं।

इस अनुभूति से आपके अंदर निर्णय करने की शक्ति आ जाती है। अब आप जिसे बदलना चाहते हैं, उसे बदल सकते हैं, अपने शरीर को निरोगी बना सकते हैं। आप अनुभव करते हैं कि आपके पास जीवन-शक्ति उपलब्ध है। यह वह शक्ति है जो शरीर को, इंद्रियों और बुद्धि को अनुप्राणित करती है। अपने ध्यान की अनुभूति में इसे जानते हुए आप निरंतर अभ्यास और धैर्य के साथ इस शक्ति का उपयोग अपने पूर्व कर्मों को मिटाने और भव चक्र को रोकने के लिए कर सकते हैं।

अभिज्ञता के साथ आप गलत प्रकार के भोजन, विचार और जीवन को बदल सकते हैं। आप उन भारी और नकारात्मक स्पंदनों से मुक्त हो सकते हैं जिनको आपने आत्मसात किया है और जो मानसिक परेशानी या शारीरिक बीमारी में बदल गए हैं। जो जानता है कि ये स्पंदन किस तरह आते हैं और किस तरह निकाले जा सकते हैं, उसके लिए स्वयं के आरोग्य की प्रक्रिया और भी तेज हो सकती है।

यह एक दंपति की कहानी है - पति हमेशा जुआ खेलता था और शराब के नशे में धुत रहता था। वह रात को देर से घर आकर द्वार पर दस्तक देता। वह जब भी आता, पत्नी तुरंत द्वार खोल देती। और तो और, वह हमेशा शांत और धैर्यशील रहती।

अंततः वह अपने ही दुर्गुणों से थक गया और वहाँ से भाग गया। पाँच वर्ष के बाद एकदम अस्वस्थ होकर वह घर लौटा। उसकी पत्नी जानती थी कि वह एक दिन अवश्य आएगा। पाँच वर्षों के अंतराल में न तो उसने अपनी शांति खोई थी, न ही किसी अवगुण को पास आने दिया। उसने अपनी मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिए इस समय का उपयोग किया।

अब वह इतनी सशक्त बन गई थी कि जिस शाम को वह लौटा, उसने सिर्फ इतना कहा, 'कृपया अंदर आइए!' उस आदमी को विश्वास नहीं हुआ कि भागने के पाँच वर्षों के बाद भी वह फिर से इन्हीं कोमल शब्दों को सुनेगा। पत्नी ने कहा, 'शायद आपको भूख लगी होगी। आइए, भोजन कीजिए।'



इन मधुर शब्दों को सुनते ही उसका अंतर्मन मोम की तरह पिघलने लगा। गालों पर अश्रु बहने लगे। उसकी पत्नी ने धीमे से कहा, 'क्या मैंने आपसे नहीं कहा था कि आप बुरे नहीं हैं, वह तो सिर्फ आपकी संगत थी। क्या ये अश्रु नहीं दिखा रहे हैं कि आपका हृदय कितना अच्छा और कोमल है?' पति का मन हुआ कि पत्नी के चरण छू ले, 'मैंने संतों के बारे में सुना है, मगर अगर तुम्हें नहीं देखता, तो उनके बारे में कभी विश्वास नहीं करता। अब मैं जानता हूँ कि मुझे फिर से जाने की आवश्यकता नहीं है।' उस क्षण से वह एक उद्देश्यपूर्ण जीवन की तरफ अग्रसर होने लगा। . . .

अपने स्थायी तत्त्व का ज्ञान आपके जीवन को सार्थक बनाता है। इसलिए अपने उत्कर्ष पर ध्यान करते हुए इस विश्व को अपनी गहरी समझ में एक कर लें। अपने वास्तविक सत्त्व को उजागर होने दीजिए और बाह्य सतह को पिघलने दें। इस सत्य के धरातल के कई मार्ग हैं - आप अपने पथ को स्वयं निर्मित करते हैं। अपने सत्य तक पहुँचने के लिए और मुक्ति की अनुभूति करने के लिए एक ऐसा कदम आगे बढ़ाइए जो सकारात्मक भावनाओं से पूर्ण है, रोशनी से प्रज्वलित है और अभिज्ञता से स्पंदित है।

### चिंतन के बिंदु

सतत चलायमान तो बदलाव की निरंतर प्रक्रिया है, वह एक परिष्कृत और लयबद्ध गति में गमन कर रहा है। मैं मध्य में हूँ, स्थिर, अभिज्ञ।

मुझे मध्य से परिधि की तरफ देखने दो। मुझे परिवर्तन की लहरों का उस बिंदु से अवलोकन करने दो जो सभी बिंदुओं का द्रष्टा है।

चक्र का हर घुमाव मेरे बंधन का या मेरी मुक्ति का कारण बन सकता है। अभिज्ञता के साथ मैं हर घुमाव का उपयोग एक चुनौती के जैसे कर सकता हूँ, स्वयं को कर्मों से मुक्त करने के लिए, बदलाव लाने के लिए, नवजीवन की अनुभूति करने के लिए, एवं अपने सत्य के समीप पहुँचने के लिए।



## निर्भरता से मुक्ति

इस संसार में अधिकांश व्यक्ति नहीं जानते कि उन्हें क्या चाहिए, मगर जीवन-पर्यंत उसके न मिलने की वजह से दुःखी रहते हैं। यही उनकी कड़वाहट का कारण है। वे शिकायत करते रहते हैं यह जाने बिना कि उन्हें क्या चाहिए। यह सरासर बेवकूफी लगती है, मगर सोचकर देखिए। जब आपका मन उदासी में डूबा हुआ हो और कोई पूछे, 'तुम दुःखी क्यों हो?', क्या आप अपने दुःख की असली वजह बता सकते हैं? या आप बेवजह किसी भी बात की शिकायत करने लगते हैं?

चलिए इस पर गहराई से विचार करें। दुःख का असली कारण क्या है? क्या बाहरी पदार्थ वास्तव में भ्रमित या अपने आप में मोहित करने वाले हैं? क्या उनमें हमें परेशान करने की या अपनी ओर खींचने की कोई अंतर्जात शक्ति है? या उनके प्रति हमारी जो आसक्ति है, क्या उसी की वजह से हम उन्हें उस नज़र से देखते हैं?

आसक्ति की वजह से ही हम बाहरी पदार्थों पर दोष थोपने लगते हैं। अगर हम करीब से देखेंगे, तो जान जाएंगे कि वे अपने आप में वस्तु मात्र हैं। हम दोषारोपण से परे जाना चाहते हैं, आसक्ति से परे, सीमित करने वाले इन कारणों से परे। यही हमारी खोज है। हम सतही जवाब या अस्थायी खुशी से संतुष्ट नहीं हो सकते हैं। असली साधक किसी क्षणिक खुशी की खोज में अपना समय व्यतीत नहीं करते हैं। वे जानते हैं कि पानी के बुलबुले की तरह वैसी खुशी पल भर में गायब हो जाएगी।

इसलिए हम दोनों को देखना चाहते हैं - सत्य और असत्य को, हमारे शाश्वत तत्त्व को और हमारे व्यसनों को। सच्चे गुरु और उनकी शिक्षा हमें सत्य की गहराई में ले जाते हैं और हमारे व्यसनों के स्वभाव को समझने में मदद करते हैं। वे हमें स्वयं से पूछने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, 'व्यसन क्या है? हमने अपने चारों ओर इतने व्यसन कैसे बाँध लिए हैं? हमने उनके साथ किन-किन रूपों में अपनी पहचान बनाई है? क्या उनके बिना हमारा जीवन सूना, दुःखी, बेसहारा प्रतीत होता है?'

सही दृष्टि के लिए हम चतुर्थ पहलू यानी एकत्व भावना पर ध्यान करेंगे। एकत्व यानी एक, मगर आपके मन में बहुत्व है। बहुत्व के कारण आप उस 'एक' को नहीं देखते हैं। उस 'एक' के इर्द-गिर्द ही सब कुछ परिक्रमा कर रहा है।

इस बात को हम इस तरह समझ सकते हैं - हमारे पास एक परिधि है और केन्द्र है। केन्द्र तो एक है, मगर परिधि पर अनेक हैं। परिधि इतनी विशाल, इतनी स्थूल है कि हमारे पास उस सूक्ष्म केन्द्र को देखने की अंतर्दृष्टि नहीं है। इसीलिए हम हमेशा परिधि पर चलते रहते हैं, स्वयं से बाहर। इसीलिए हम दोषारोपण करने के लिए किसी कारण को ढूँढ़ते रहते हैं। हम यह कहकर किसी दूसरे पर अपना दुःख थोपने में खुश हैं, 'अगर तुम मेरे जीवन में नहीं होते, तो मेरा जीवन स्वर्ग होता।' या इसी बात को हम उलटा भी कह देते हैं, 'अगर तुम मेरे जीवन में होते, तो मेरा जीवन स्वर्ग होता।'

परिधि की भूमिका इतनी भ्रामक है कि केन्द्र से नज़र छूट जाती है। देखने की आवश्यकता है कि संपूर्ण परिधि केन्द्र के लिए ही बनी हुई है, अगर केन्द्र का अस्तित्व नहीं होता तो परिधि का अस्तित्व भी नहीं होता।

स्वयं को कुछ क्षण के लिए देखिए, केन्द्र से परिधि की तरफ देखते हुए। अब तक आपका मन चौबीसों घंटे बहुत्व में उलझा हुआ था, यानी परिधि में। हर समय कोई व्यक्ति या कोई वस्तु आपके मन पर हावी रहता है - धन-संपत्ति, वैभव, शक्ति, कोई दोस्त या कोई दुश्मन। इसीलिए आप कभी भी स्वयं के साथ पूर्ण रूप से जुड़े हुए नहीं हैं। अगर कभी स्वयं के साथ अकेले भी बैठते हैं, तब भी कोई न कोई वस्तु आपका ध्यान खींचती रहती है। आप तो इस तरह जीते हैं मानो केन्द्र में कुछ भी नहीं है, मानो सब कुछ बाहर ही है।

इस मूर्त संसार का भी अस्तित्व है। यह हमारे अस्तित्व का मूर्तिमान अर्ध भाग है। हमें इस पर विश्वास है। मगर यह भौतिक संसार जैसा है, उसे वैसा मानने के बजाय हम जब इससे आसक्त हो जाते हैं, तब समस्या पैदा होती है। तब हम अमूर्त संसार की उपेक्षा करने लगते हैं। जो दृश्यमान या मूर्त नहीं है, हमें उस पर विश्वास नहीं है।

अतः हमें हमारे मन के द्वार खोलकर देखना चाहिए कि दृश्य अदृश्य पर निर्भर करता है। अगर अदृश्य नहीं है, तो दृश्य का कोई अस्तित्व नहीं है। अगर अमूर्त नहीं है, तो मूर्त के पास भावना नहीं है। अमूर्त के बिना मूर्त का एहसास नहीं किया जा सकता है। हम मूर्त से इसीलिए प्रेम करते हैं क्योंकि उसके केन्द्र में अमूर्त है।

उदाहरण के लिए, उस नारी को देखिए जिसने एक सौंदर्य प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार जीता है। सभी राष्ट्र उसे विश्व सुंदरी मानते हैं। उसके सौंदर्य से मोहित होकर कई लोग उससे शादी करना चाहेंगे। वे उस सुंदर शरीर में स्थित आत्मा के बारे में नहीं सोचते हैं। मगर एक दिन उसकी आत्मा शरीर को छोड़ देगी। उसका शरीर मृत पड़ा रहेगा, मगर तब उसके चाहने वाले जो आत्मा में विश्वास नहीं करते, वे भी उससे शादी करने के लिए राजी नहीं होंगे। सभी कुछ अभी भी विद्यमान है - आँखें, कान, हाथ-पाँव और आकार।

क्या कारण है कि अब इस मृत, दृश्यमान शरीर में कोई आकर्षण नहीं रहा? बेशक इसमें से कुछ चला गया है! साँस चली गई है। मगर साँस का संचालक कौन था? कौन साँस की प्रक्रिया कर रहा था? कौन अंतःश्वसन और उच्छ्वसन कर रहा था? कौन उस साँस के केन्द्र में था? क्या आप जानते हैं? मैं अब कहता हूँ कि यही सत्य जानने के लिए आप यहाँ आए हैं। जब आप इस पर ध्यान करेंगे, तब आप उस अमूर्त को जानने लगेंगे जो इस मूर्त शरीर को जान देता है और इसे सुखद, जीवित और सामाजिक बनाता है।

जब आप स्वयं में अपने भौतिक पहलू से परे कुछ देखने लगेंगे, तब आपका जीवन सार्थक हो जाएगा। आप अपने मनुष्यत्व को सराहने लगेंगे। दूसरों के प्रति अपने बर्ताव में बदलाव लाएँगे। आप सिर्फ भौतिक शरीर को महत्व नहीं देंगे।

अब आप लोगों को वस्तु मात्र नहीं समझेंगे। रिश्ते बदलने लगेंगे क्योंकि आप उनके साथ कर्ता होने का नाता निभाएँगे। अभी तक आप दूसरों को वस्तु मात्र समझते आए हैं, आपने उनके साथ एकत्व का एहसास

नहीं किया है। जब आप दूसरों को कर्ता समझने लगेंगे, तब आप 'मैं' को देखेंगे, उसको देखेंगे जो 'है'।

जब आप 'मैं हूँ' का अनुभव करते हैं, तब आप अपने चैतन्य में जी रहे हैं। यहाँ द्वैतभाव नहीं है।

जैसे ही आप कहते हैं, 'मैं चाहता हूँ,' इच्छा उमड़ने लगती है। इच्छा से उभरती है वस्तु। अब आप संसार से अलग हो रहे हैं। इन दो से, यानी 'मैं' और 'चाहता हूँ' से एक तीसरी चीज़ 'संसार' उभरने लगती है - 'मैं संसार को चाहता हूँ।' तीन का यह संगम द्वैतभाव से उत्पन्न होता है। जब भी आप कर्ता से, अपने मध्य से, 'मैं' से अलग होते हैं, तब बाह्य संसार उत्पन्न होता है। जैसे ही आप अपने चैतन्य से निकलते हैं, वहाँ द्वैतभाव पैदा होता है और वही संसार है।

एकत्व का अर्थ है अंततः अनुभूति करना कि 'मैं हूँ,' न कि 'मैं चाहता हूँ।' इसका अर्थ है द्वैतभाव की धारणा को भंग करके एक हो जाना, जो आप 'स्वयं' हैं, वह 'स्वयं' हो जाना। जब आप संपूर्ण संसार को 'स्वयं' में ले आते हैं, तब जीवन में एकत्व प्रकट होता है। वहाँ अन्यत्व की भावना नहीं रहती, सिर्फ एकत्व रहता है।

अगर आप इस सत्त्व को अपनी अभिज्ञता में रखेंगे, तब आप जो भी देखेंगे, उससे द्वैतभाव उत्पन्न नहीं होगा। आप किसी व्यक्ति या वस्तु को चाहत या जाँच की दृष्टि से नहीं देखते हैं। बस, आप इस तरह देखते हैं मानो दर्पण में देख रहे हैं। जिस व्यक्ति को आप वस्तु के रूप में देखते थे, वह तो अब कर्ता है, आपके समान। आप प्रतिबिंब को अपने समान देखते हैं - न कम, न ज्यादा। जो आप हैं, यह भावना उससे अलग नहीं है।

एक कलाकार था। उसने अपने कमरे में चारों ओर, यानी छत पर और दीवारों पर शीशे के टुकड़े सजाने का निश्चय किया ताकि कमरे की बत्ती हर तरफ प्रतिबिंबित हो। उसे बैठकर इन प्रतिबिंबित रोशनियों को देखना अच्छा लगता था। एक दिन अकस्मात उसका कुत्ता कमरे में घुस आया। अनेक शीशों में इतने सारे कुत्ते देखकर वह भौंकने लगा, बिना समझे कि जिन कुत्तों को वह देख रहा था, वे उसी के प्रतिबिंब थे, न कि

उसके दुश्मन। उसने तो उनको अपने जैसा ही समझ रखा था, अतः वह भौंकता ही रहा। अंत में थक कर गिर पड़ा। बेचारे कुत्ते को सारे प्रतिबिंब उस पर भौंकने और काटने वाले ही नज़र आ रहे थे। इस तरह उसने द्वैतभाव उत्पन्न किया।

इस संसार को अपनी इच्छाओं की परछाई के रूप में देखिए। अपनी इच्छाओं को हटाइए और देखते रहिए। भौंकिए मत। जब आप स्वयं को एक द्रष्टा के रूप में देखेंगे, तब यह संसार आपकी अभिज्ञता में लीन हो जाएगा।

यह एक प्रतिबोध है। इसे समझाना कठिन है, मगर इसकी अनुभूति करने से आप सभी के साथ समानता की अनुभूति करेंगे। फिर आपको कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा कि आप किसी अमीर आदमी के साथ हैं या किसी गरीब के साथ, राजा के साथ या रंक के साथ। इससे आपके मन में कोई भिन्नता उत्पन्न नहीं होती है। क्यों नहीं? क्योंकि अब आपके पास एक नई समझ है। जो आप स्वयं में देखते हैं, वही दूसरे में है। उनका 'मैं' और आपका 'मैं' गुण में समान है - सिर्फ पवित्र आत्मा है।

जब आप 'कम' और 'ज़्यादा' की नज़र से देखेंगे, तब आप एक साधारण आदमी को कम और ऊँची पदवी वाले मित्र को ज़्यादा समझेंगे। जब आप दूसरे को कर्ता नहीं मानकर वस्तु मात्र मानते हैं, तब जिसके पास ज़्यादा है, वह एक अमीर वस्तु माना जाएगा और जिसके पास कम है, वह एक गरीब वस्तु माना जाएगा। ऐसा रिश्ता जिसे हम अक्सर देखते हैं, एक वस्तुनिष्ठ रिश्ता है। यह तब तक ही टिकता है, जब तक कुछ वस्तुएँ रहती हैं। जब वे वस्तुएँ नहीं रहती, रिश्ता खत्म हो जाता है। क्यों? क्योंकि वह रिश्ता बाहरी वस्तुओं पर निर्भर करता है।

इस चिंतन से एक नई तरह की विचार-धारा उत्पन्न होती है। स्वयं से शुरू करते हुए कहिए, 'एकत्व, मैं एक हूँ। मैं इस संसार में अकेला ही आया हूँ। इस संसार में एकाकी भ्रमण करते हुए मैंने किसी प्यारी माता के गर्भ में प्रवेश किया और वहीं बड़ा होता रहा।'

इस तरह आगे बढ़ते हुए आप देखते हैं कि किस तरह आप अकेले आए थे। उस समय आपको कोई नहीं जानता था। आप एक अजनबी थे। आपके पास कोई पता नहीं, जान-पहचान नहीं और सिफ़ारिश पत्र भी नहीं था। आपके पास कुछ नहीं था।

हम सभी एक छोटे से वाहन में अकेले आए थे, एक लघु आकार में - एक बीज और अंडा। उस समय हमारे पास कोई साधन नहीं था। अब हमारे पास अनेकों साधन हैं जिनसे हम देखते हैं, भाव व्यक्त करते हैं, बोलते हैं और गमन करते हैं। मगर इस जीवन के आरंभ में हमने एक छोटे से शरीर में प्रवेश किया, जो हमारा वाहन था। बस, इतना ही!

उस समय कौन था? आप किसके लिए रो रहे थे? अब आप इतनी चीजों के लिए आँसू बहाते हैं, पर तब आप सिर्फ़ एक चीज़ के लिए रो रहे थे - गहरी साँस लेने के लिए! वही आपकी प्रथम आवश्यकता थी। आप रोए, आपने साँस ली और आपके शरीर की समस्त प्रक्रियाएँ काम करने लगीं। तब आपका प्रथम एहसास क्या था? आपके दिल की धड़कन।

इस विचार के साथ कार्यरत रहें, 'मैं' एक हूँ, 'मैं' एक जैसे आया हूँ। अब आप समझ जाएँगे कि अपने पैरों पर किस तरह खड़े रहना है। जब आप रोते हैं कि, 'मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता! मैं इस वस्तु या उस वस्तु के बिना जी नहीं सकता!', तब आँसू आपकी दृष्टि में रुकावट बन जाते हैं। ये सब मानसिक व्यसन हैं। आप उनके बिना जी रहे थे! आप अकेले आए थे! उस समय आपको सिर्फ़ साँस की ज़रूरत थी एवं शरीर के पोषण के लिए कुछ भोजन की। आप अब भी उनके बिना जी सकते हैं!

इस चिंतन का उद्देश्य है व्यक्ति को सक्षम करना ताकि वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाए। इस तरह न ही वह किसी पर टिकेगा और न ही किसी पर बोझ बनेगा। बात आपको संसार से अलग करने की नहीं है, मगर एक स्वस्थ व्यक्ति बनाने की है। जब आप अपनी आंतरिक क्षमता को बढ़ाएँगे, आपका मन निरोग और बलवान बन जाएगा। तब आपको एहसास होगा कि आप अकेले रह सकते हैं।

जिस क्षण से आप इस संसार में आए हैं, आप दृश्य के माध्यम से अदृश्य की तह को खोलने का प्रयास कर रहे हैं। मानव जीवन और कुछ नहीं, उस अमूर्त का प्राकट्य ही है। एवं इस प्राकट्य से बहुत सारे गुण सामने आ जाते हैं।

किसी पौधे के बीज को देखिए। कितना साधारण दिखता है! मगर जब वह खुलकर अंकुरित होता है और एक सुंदर फूल को प्रकट करता है, तब हमें एहसास होता है कि उस नन्हे से पीले, सफ़ेद, या काले बीज के अंदर कितना सौंदर्य छिपा हुआ था। प्रारंभ में हम बीज पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते, मगर जब वह बीज अपने संपूर्ण सौंदर्य को अनावृत करता है, तब हम उस पर ध्यान देने लगते हैं। इसी तरह अनादि समय से इस अदृश्य आत्मा में संपूर्ण सौंदर्य रहा है। अब यह मानव जीवन के माध्यम से अनावृत हो रहा है।

बीज के आधार पर आकार का सृजन होता है। बीज के गुण ही उसके परिणाम, उसका पुष्पहास निर्धारित करते हैं। अगर हमारे पास गुलाब का बीज है, तो गुलाब का फूल उगेगा। अगर हम आम के बीज बोएँगे, तो बीज अपना दिल खोलकर एक रसीले आम के पेड़ में बदल जाएगा। जब सेब का बीज बढ़ता है, सेब नज़र आते हैं। जब आपने उन नन्हें काले बीजों को पहले देखा, तब आपको सेब और आम दिखाई नहीं दिए। फिर भी आप अपनी अभिज्ञता में जानते हैं कि उनके पास अद्भुत गुण हैं।

अपनी उस नन्हीं सी शुरुआत पर ध्यान कीजिए। पीछे मुड़कर देखिए और कहिए, 'मैं अकेला आया था, वहाँ आनंद था, भय नहीं, कोई व्यसन नहीं।'

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि आपके व्यसन जितने बढ़ेंगे, बुढ़ापा उतना ही शीघ्र आएगा। व्यसन जितने कम होंगे, आप उतने ही जवान रहेंगे। लोग अपने तनाव और चिंताओं के कारण मुरझा जाते हैं।

जब आप छुट्टी पर हैं, तब अपने आप को देखिए। आप तरोताजा महसूस करते हैं। क्यों? क्योंकि आपके पास कोई माँग नहीं है, न ही कोई खिंचाव। माँगें और व्यसन आपका क्षय करती हैं। भले ही आप सोचें कि



उनके साथ रहने से आपको कुछ मिल रहा है, मगर वास्तव में आपके अंतर का क्षय हो रहा है।

इसीलिए ज्ञानवान व्यक्ति वस्तुओं के प्रति आसक्त नहीं होते हैं। ऐसा ही एक ज्ञानी व्यक्ति था जो एक बड़े घर में रहता था। मगर उसका घर खाली था। एक शाम कुछ चोर आए। 'मैं क्या करूँ?' ज्ञानी सोचने लगा। 'चोरों के पास अक्ल नहीं होती और जब उन्हें पता चलेगा कि मेरे पास उनके लायक कुछ भी नहीं है, उन्हें क्रोध अवश्य आएगा। तब शायद वे मुझे हानि पहुँचाने की कोशिश करें।'।

इसलिए उसने वहाँ पड़ी एकमात्र आलमारी खोली, जो खाली थी और अंदर छिप गया। चोर आए और देखने लगे। उन्हें कुछ नहीं मिला। जब उन्होंने आलमारी देखी, तो उसे खोलने लगे। उन्होंने अंदर बूढ़े आदमी को खड़े देखा।

'तुम हमसे क्यों छिप रहे हो?' उन्होंने पूछा।

'क्या जवाब दूँ?' ज्ञानी सोचने लगा। उसने कहा, 'मैं आपसे शर्म के मारे छिप रहा हूँ।'

'किस बात की शर्म?' उन्होंने पूछा।

'श्रीमान,' उसने जवाब दिया, 'इस घर में आपको देने लायक कुछ भी नहीं है। अपने मेहमानों को कुछ नहीं देने से मुझे बहुत शर्मिंदगी हो रही है। इसलिए मैंने सोचा कि मुझे छिप जाना चाहिए।'

चोर हँसने लगे। 'हाँ', उन्होंने कहा, 'तुम ज्ञानी हो, क्योंकि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है।'

'हाँ', ज्ञानी ने जवाब दिया, 'अगर हमारे पास कोई वस्तु है, तो हमें चिंता है। अगर हमारे पास कुछ नहीं है, तो चिंता कैसी?'

वस्तुओं का परिग्रह करने से आप चिंताओं का परिग्रह कर रहे हैं। इससे आपको इस बात की भी चिंता रहती है कि कोई आपकी वस्तुओं पर ध्यान देता है या नहीं। अगर मेहमान आए और उन्होंने आपकी पेंटिंग को

नहीं सराहा, आपको लगता है कि उन्हें परख नहीं है। अगर चोर आकर उसे ले गए, तब भी आप चिंता करेंगे।

दीक्षित को यह भावना दी जाती है ताकि वह इतनी सारी सांसारिक वस्तुओं को देखकर दुःखी नहीं हो। साधु होने के कारण वह एक घर से दूसरे घर भिक्षा के लिए जाता है। उस समय उसे यह सोचकर बेचैन नहीं होना चाहिए कि उसके पास मठ की चारदीवारी और एक खाली कमरे के अलावा कुछ भी नहीं है। इसलिए वह उस एकत्व पर ध्यान करता है।

‘मैं इस संसार में खाली हाथ आया, केवल अपने अच्छे संस्कारों के साथ। उनकी वजह से मेरा मनुष्य जीवन अनावृत हो रहा है। इतनी सारी सांसारिक वस्तुओं के साथ अपनी पहचान बनाते हुए मैं थककर चूर हो गया हूँ, कुम्हला गया हूँ। अब मैं इस बोझ को नहीं उठाना चाहता।’....

साथ ही, दीक्षित अपने गमन पर चिंतन करता है जो उसे इस संसार से करना है। ‘मैं अकेला आया हूँ और अकेला ही जाऊँगा।’

यही सत्य है। शायद इससे आप शोकाकुल हो जाएँ। जब भी कोई रचित भ्रम हटता है, तब आप दुःख से घिर जाते हैं। आप तब तक दुःखी रहते हैं जब तक आप उसके पीछे छुपे सत्य को नहीं देखते हैं। तत्पश्चात् आप सुखी हो जाते हैं। मन शायद रोएगा क्योंकि उसने कुछ खोया है, मगर आत्मा हँसेगी क्योंकि उसने कुछ पाया है।

इस तरह हम प्रस्थान और गमन अकेले ही करते हैं। तब हम इस दुनियाँ के साथ क्यों रहते हैं? यह समस्त मानव परिवार किसके लिए है? मित्र किसके लिए हैं? अगर हम अकेले ही आते और जाते हैं, तब हमें इन सबकी आवश्यकता क्यों है?

इसमें हमारे लिए कुछ बोध है। हम यहाँ इस संसार से सेतु बनाने आए हैं, नाता जोड़ने के लिए, मगर इससे बँधने के लिए नहीं। यही फ़र्क है। सेतु हमें एक पार से दूसरे पार जाने में मदद करता है। बंधन हमें एक पार बाँध देता है और कहीं भी जाने नहीं देता। यह जानते हुए हम बंधन की नहीं, अपितु सेतु की प्रक्रिया का उपयोग करते हैं।

मगर हमारी मानसिकता हमेशा व्यसन और बंधन की तरफ झुकती है। हम वस्तुओं को स्वयं के साथ बाँधना चाहते हैं। एक बार जॉर्ज बरनार्ड शॉ अपने बगीचे पर झाँकती खिड़की के पास बैठे थे। उनका चचेरा भाई बाग में गया, कुछ फूलों को उखाड़ा और उन्हें एक फूलदान में डाल दिया। शॉ ने उससे पूछा, 'तुमने ऐसा क्यों किया?'

चचेरे भाई ने जवाब दिया, 'अपने स्वागत कक्ष को सजाने के लिए'

शॉ ने पूछा, 'अगर कोई आकर तुम्हारा सिर काट दे, तुम्हें कैसा महसूस होगा? तुमने बगीचे में ठहरकर पल्लवित होते पौधों का आनंद क्यों नहीं लिया? मैं रोज़ यहाँ बैठकर उन्हें निहारता हूँ। अपने घर को सजाने के लिए तुम्हें उन्हें उनके स्थान से हटाना पड़ा। ऐसा करने के बजाय तुम खुद उनके पास क्यों नहीं चले जाते हो?'

यह मनोविज्ञान का एक उदाहरण है। जब आप आसक्ति से घिरे हुए हैं, तब आप जीवन को उसके स्थान में बढ़ते हुए नहीं देखना चाहते। आप उसे अपने पास रखना चाहते हैं, एक पाकेट में डालकर लेबल लगाकर उसे अपना कहना चाहते हैं, 'यह मेरा है।' अगर आप ऐसा करेंगे, तो क्या होगा? जीवन शीघ्र ही सूख जाएगा।

जब यह प्रतिबोध खुलकर पल्लवित हो जाता है, तब आप संसार के साथ प्रेमपूर्ण हो जाते हैं।

आप सभी के मित्र बन जाते हैं। आप कहते हैं, 'चलो हम सेतु बनकर रहें और एक दूसरे के साथ संपर्क करें।'

अब आप किसी दूसरे के बंधन का कारण नहीं बनना चाहते हैं। आप बाँधना नहीं, अपितु मुक्त होना चाहते हैं। अगर आप किसी व्यक्ति के साथ बंधन की पहचान बनाते हैं, उसकी समस्या को अपने सिर पर लेते हैं, तब आप उसे अवकाश नहीं दे रहे हैं। जब वह व्यक्ति आपकी इच्छानुसार नहीं करता है, तब आप खीजने लगते हैं। आप शिकायत करते हैं, 'वह मेरी इच्छानुसार नहीं कर रहा है। मैं उसे बीसों बार समझा चुका हूँ, मगर फिर भी वह मेरी बात नहीं सुनता है।' आप दुःखी और गुस्सैल हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि आप उसके साथ पहचान बना रहे हैं।

अगर आप अपने मित्र के साथ सेतु बाँध रहे हैं, तो आप अपनी भावना व्यक्त कर सकते हैं। अगर आपका मित्र सहमत नहीं है, तो आप कम से कम कह तो सकते हैं, 'हम अपनी असहमति में सहमत हैं।' इसमें भी आपकी सहमति है। यहाँ नाराज होने का कोई कारण नहीं है। यह एक बहुत गहरी अनुभूति है - स्वयं को सारे बंधनों से मुक्त कर देना।

हम इस संसार में लड़ने-झगड़ने के लिए नहीं आए हैं, न ही उदास या दुःखी होने के लिए। कई लोग हैं जो व्यवहार के ऐसे दुष्कर भँवर में फँसे हुए हैं। उन्हें रहने दीजिए। जिनका मन सांसारिक वस्तुओं में आसक्त है - जैसे अधिकार, पद, दौलत - वे और कुछ नहीं कर सकते! आप देख सकते हैं कि जब उनकी शक्ति खत्म हो जाती है और उनके सांसारिक बंधन चले जाते हैं, तब उनके साथ क्या बीतती है? उनका जीवन निराशा में डूब जाता है। आप उनकी कटुता, उनके दुःख का अंदाजा नहीं लगा सकते। यह वस्तुओं का स्वभाव है कि वे चली जाएँगी। लोग दुःखी बन जाते हैं क्योंकि वे अपने मन और अपनी ऊर्जा को उन वस्तुओं में आसक्त होने देते हैं जिन्हें अंततः चले जाना है।

मगर आप दूसरों की बढ़ती और उन्नति में मदद करना चाहते हैं क्योंकि आप जानते हैं कि यह जीवन संपर्क बढ़ाने के लिए है। आप स्वयं से कहते हैं, 'जितना मुझसे संभव है, उतने ही अधिक लोगों के साथ समागम करना चाहिए।' आपके रिश्ते खरे हैं क्योंकि आप द्वैतभाव उत्पन्न नहीं कर रहे हैं।

कोई व्यक्ति लंबा या नाटा हो, पतला या मोटा, गरीब या अमीर, एक जाति या दूसरी जाति का, शिक्षित हो या नहीं - आप तो उस कर्ता के साथ संबंध जोड़ते हैं जो व्यक्ति के मध्य में है। आप किसी को ऊँचा या नीचा नहीं मानते हैं। आप स्वयं को वैसी विषमता से सीमित नहीं करते। तब ऐसी कोई भी विषमता जिससे परेशानी होती है, चली जाती है। उसी क्षण से आप संसार के साथ एक अनूठा संबंध स्थापित कर लेते हैं। अब सभी के साथ जीना और व्यवहार करना आसान हो जाता है क्योंकि आप सभी के साथ सहभाजन के स्तर पर हैं।

जब साधक अकेलेपन पर ध्यान करता है, तब संभव है कि भय रेंगता हुआ आ जाए। 'मैं अकेला हूँ? क्या इस संसार में कोई भी नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ?' शायद ऐसा विचार आने लगे। शायद यह विचार आपको भयभीत करे और आप निराश हो जाएँ।

जब ऐसा होता है, तब स्वयं को एक नए ढंग में देखना आवश्यक है। स्वयं को एक व्यक्ति के जैसे, एक जीवन शक्ति के जैसे देखें। ध्यान में अपनी आत्मा की गत्यात्मक, प्रबल वास्तविकता को देखें। जैसे ही आप इस ऊर्जा पर केंद्रित होंगे, आपको अनुभूति होगी कि आप नित्य हैं, अपने भविष्य के रचयिता हैं। प्राचीन ग्रंथों में इसे सिंहवृत्ति कहा जाता है।

जंगल का सिंह बड़े झुंड में नहीं चलता। आप चिड़ियाघर में कई सिंहों को एक साथ देख सकते हैं, मगर बीहड़ वन में नहीं। वहाँ हर सिंह के पास अपना डेरा, अपनी माँद, अपना राज्य होता है। एक सिंह अकेला रहना चाहता है। साथ ही उसके हृदय में कोई भय नहीं है। वह जानता है कि वह राजा है। ध्यान में यह सिंहत्व उभरना चाहिए। हमें उस निडरता का अनुभव करना चाहिए।

एक बार एक सिंहनी की मौत हो गई और उसका छोटा सा शावक बीहड़ वन में भटक गया। एक गड़ेरिये ने उसे देखा और घर ले गया। वह सिंह-शावक को अपनी भेड़-बकरियों के साथ पालने लगा। वह शावक उनके साथ बढ़ने लगा, दिन प्रतिदिन विशाल और शक्तिशाली बनता गया।

एक दिन जब सिंह-शावक सभी भेड़-बकरियाँ के साथ चर रहा था, तब अचानक एक बड़ा सा सिंह उनके चारागाह के ऊपर पहाड़ पर आकर ज़ोर से दहाड़ने लगा। उसकी दहाड़ सुनकर सभी भेड़-बकरियाँ और सिंह शावक भागने लगे। दहाड़ने वाले सिंह ने सब को भागते हुए देखा और सोचने लगा, 'हाँ, इन्हें तो भागना ही चाहिए, मगर वह सिंह-शावक क्यों भाग रहा है?'

वह शावक के पीछे भागा और उसे पकड़ लिया। शावक डर के मारे रेंकने लगा। तब सिंह उसे जल के पास ले जाकर उससे कहने लगा, 'तुम क्यों रेंक रहे हो? तुम तो एक सिंह हो! इस जल में अपनी परछाई को देखो

और दहाड़ो।' मगर छोटा सा सिंह न तो उसकी बातें समझ सका, न ही विश्वास कर सका। वह चरने के लिए जाने लगा।

'तुम क्या कर रहे हो, घास की पत्तियों को क्यों कुतर रहे हो?' विशालकाय सिंह ने पूछा। 'यह तुम्हारा भोजन नहीं है।' मगर सिंह-शावक भय से काँपने लगा।

'तुम क्यों काँप रहे हो?' उसने नन्हे शावक से पूछा। 'मैं तुम्हारे जैसा हूँ। तुम मेरे जैसे हो। तुम अपना स्वभाव भूल चुके हो।'

यह मन इतना कमज़ोर है कि अगर उसने एक रूप अपना लिया है, तो वह अन्य दृष्टिकोण को सहजता से स्वीकार नहीं करता है। वह उसी चौखट में, उसी दिशा में रहता है। हमारा मन इसी तरह स्वयं को सीमित करता है। सिंह-शावक अपने सीमित दृष्टिकोण को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। मगर बड़ा सिंह भी उसे समझाने पर आतुर था।

'नहीं, समझने का प्रयत्न करो,' उसने शावक से कहा। 'तुम मेरे जैसे हो।'

उसने उसे तालाब के जल में देखने के लिए कहा। वह उसके पास खड़ा हुआ और कहने लगा, 'देखो, अपनी परछाई देखो। मेरी परछाई देखो। अपने पीले रंग को देखो, अपनी अयाल, अपनी पूँछ को। देखो कितनी घुँघराली है। देखो, तुम्हारे पैने दाँत एकदम मेरे जैसे हैं। देखो तुम्हारा सिंह सा चेहरा।' और शावक देखने लगा और सोचने लगा।

'हाँ, मेरा चेहरा सिंह का बड़ा चेहरा है। यह सच है। न मैं ऊन से ढका हूँ, न ही मेरे सर पर सींग हैं। मगर यह जानवर दहाड़ता है और मैं 'बा,बा' कहता हूँ। यह बहुत गहरा फ़र्क है!'

'आओ, नन्हें शेर, अपनी आवाज़ को निकालो! तुम्हारा हृदय बहुत विशाल है। मैं उसकी धड़कन सुन सकता हूँ, इसलिए अपनी दहाड़ बाहर निकालो!'

नन्हे शावक ने जरा सी चेष्टा की। उसने अपना कंठ खोला मगर आदत की वजह से उसका स्वर यंत्र सिकुड़ गया था और वह दहाड़

नहीं सका। धीरे-धीरे उसने कोशिश की और अंत में उसकी सच्ची दहाड़ निकल पड़ी।

विशाल सिंह ने उससे कहा, 'अब अकेले चलो। झुंड में मत चलो। तुम्हें झुंड से सरोकार नहीं है। वे सब भेड़ और बकरियाँ हैं। तुम एक सिंह हो। तुम भेड़ और बकरियों के साथ कैसे जी सकते हो? अब वहाँ जाओ और ज़ोर से दहाड़ो!'

शावक वहाँ वापस गया और इतनी ज़ोर से दहाड़ा कि सभी भागने लगे - भेड़, बकरियाँ, गड़ेरिया और बाक़ी सभी। उसने अपने स्वभाव को पहचान लिया। वह परिवर्तित हो चुका था। 'मैं अकेले खड़ा हो सकता हूँ। साथ ही, मैं लाचारी और भय के एहसास के बिना जी सकता हूँ।'....

इस तरह एकत्व की भावना परिवर्तन लाने वाली भावना है। यह एक नवीन आदर्श स्थापित करता है, आपके मन के लिए एक नवीन दृष्टि। धीरे-धीरे यह एक प्रतीक बन जाता है और आप स्वयं को एक नवीन आयाम के रूप में देखने लगते हैं।

'मैं' अकेले आता हूँ एवं अकेले जाता हूँ, मगर मैं अकेला नहीं हूँ। स्वयं में उस एकत्व को जानने के बाद, मैं हर व्यक्ति में उसे देखता हूँ। इसलिए सभी मेरे समान हैं और मैं सभी के समान।'

आपके मन में सभी के प्रति वैसा ही आदर भाव है जैसा स्वयं के प्रति है। आप न तो श्रेष्ठ हैं न तुच्छ। दोनों मापदंड चले गए हैं। आप सभी के साथ एक हैं। जब आप सबको समान समझेंगे, तो हर व्यक्ति आपके साथ सुखद महसूस करेगा। अगर आप किसी को छोटा समझेंगे, तो शायद उसे बुरा लगे या वह स्वयं को तुच्छ समझने लगे। अगर आप किसी को श्रेष्ठ मानेंगे, तो भी शायद उसे सही नहीं लगेगा। वह असमंजस में रहेगा कि आपके साथ कैसा व्यवहार करे। वह आपसे श्रेष्ठ नहीं है, मगर आपने उसे श्रेष्ठ बना दिया और अब वह अपनी कमियों को छुपाकर अपनी उस झूठी छवि के लिए जी रहा है जो आपने पैदा की है।

हम सभी एक अनंत सफर तय कर रहे हैं। क्या हमारे पास आगे की योजना है? अधिकांश लोग नहीं बता पाएँगे, मगर हम सभी जानते हैं कि हमें कहीं जाना है। यही संसार का चक्र है।

हम कहाँ जाते हैं? हम उन स्थानों पर जाते हैं, उन लोगों के पास, उन परिस्थितियों की ओर जिन्हें हम अपने प्रेम, अपने संबंध और एक दूसरे के बीच के सेतु द्वारा बना रहे हैं। जिसकी सृष्टि हम आज कर रहे हैं, वह बाद में हमारे स्वागत के इंतजार में रहेगी। शायद यह बात असंगत लगे। मगर जब आप ध्यान के द्वारा अपनी अनंत अपरिमित आत्मा की गहराई में जाएँगे, आप अपने जीवन की खोज को छू लेंगे। वह आपका अदृश्य पथ बन जाएगा। वहाँ आपका स्वप्न साकार हो जाएगा। वह विकास की ओर आपका अनंत सफर बन जाएगा।

हर व्यक्ति एक एकाकी मुसाफिर है। साथ ही, वह संगति में भी है। हमारे पास दोनों हैं - एकाकीपन और संगति। विशेष नज़र से देखें तो एकत्व है, सामान्य नज़र से देखें तो बहुत्व है। एक नज़र से अदृश्य संसार है, दूसरी नज़र से दृश्यमान संसार है। दोनों गहराई से जुड़े हुए हैं, व्यक्तिगत स्तर और सार्वलौकिक स्तर पर एक साथ कार्यरत हैं, इस आत्मा को अपनी आखिरी मंज़िल तक पहुँचाने के लिए।

अब से आप संसार के साथ सार्वलौकिक स्तर पर काम करना शुरू कर सकते हैं। ध्यान दें कि आप व्यक्ति को व्यक्ति मानते हैं या वस्तु! यह दैनिक अभ्यास है। आज से शुरू करें। स्वयं से पूछिए, 'मैं उस व्यक्ति को किस नज़र से देखता हूँ?' पहले एक मानसिक तस्वीर तैयार कीजिए। क्या आप उसे एकदम अपने समान देखते हैं? अगर यह सच है, तो स्वयं से कहिए, 'जो मुझे नहीं पसंद है, शायद उसे भी नहीं पसंद हो, इसलिए मुझे वैसा नहीं करना चाहिए। जो मैं चाहता हूँ, शायद उसे भी वही चाहिए। इसलिए मुझे उसके साथ बाँटकर रहना चाहिए, जीओ और जीने दो का व्यवहार।'।

जब आप एकत्व की अनुभूति करोगे, तब आप अपनी मंज़िल जीत चुके हैं। जब आप उस एकत्व को नहीं देखते हैं, तब आप हमेशा दूसरों के कंधों पर रोते हुए उन पर निर्भर करते रहते हैं। अगर आपको रोने के



लिए कंधा नहीं मिला, तो आप क्या करेंगे? आप बेबस हो जाते हैं। अगर आप अभी से आंतरिक शक्ति और समझ को बढ़ाएँगे, तो बुढ़ापे में भी आपके मित्र आपके पास रहेंगे। वे आपके साथ बंधन या बोझ का एहसास नहीं करेंगे, उन्हें आपके साथ नाता रखने में खुशी मिलेगी - व्यक्ति से व्यक्ति के बीच में।

यह अनुपम ध्यान हमें सत्य की एक झलक दिखाता है। यह हमें देखने देता है कि चारों ओर की ज्योति हमारी आत्मा की ज्योति ही है। बाहरी आकार अलग हो सकते हैं - चिमनी, बत्ती, छाया आदि - मगर भीतर की सजीव ज्योति एक ही है। आपको अनुभूति होने लगती है कि हर व्यक्ति एक ज्योति ही है, स्वयं आप भी। बस, इसी स्तर पर एक दूसरे के साथ संप्रेषण का सेतु बन सकता है। मानवता के साथ ऐसा सेतु बाँधने का और कोई मार्ग नहीं है। जब तक आप आकारों को देखते रहेंगे, सेतु नहीं बनेगा।

सभी में इस ज्योतिर्मय गुण को देखने की अनुभूति आपको सिखाएगी कि यह जन्मजात है, न ही प्रदत्त है, न प्रयुक्त। यह व्यक्ति का स्वयंभूत स्वभाव है, मानव जीवन का जन्मसिद्ध अधिकार। इसीलिए इस शिक्षा का हमारे जीवन से गहरा संबंध है। यह मन की उस पुरानी आदत को मिटा देती है जो द्वैतभाव उत्पन्न करती है, इससे हमारी सिंहवृत्ति उभरने लगती है। जब मन अलगाव पैदा करता है, कहने लगता है कि 'यह सिंहवृत्ति किसी और के पास है, मेरे पास नहीं,' तब एकत्व के द्वारा स्वयं को स्वयं के पास ले आइए। एकत्व की अनुभूति करें। सिंहवृत्ति को स्वयं में भी देखें और दूसरों में भी।

अब आप दोनों को जानने के लिए तैयार हैं, अपनी अंतर्जात शक्ति और अपनी वर्तमान परिस्थिति को, अपने केन्द्र और अपनी परिधि को। एक और अनेक पर ध्यान करते हुए आप अनेकत्व को हटा सकते हैं, मन की परतों को खोलकर फेंक सकते हैं और सर्व-एकत्व के आनंदित भाव को उजागर कर सकते हैं। ....

### चिंतन के बिंदु

एकत्व, मैं एक हूँ। मैं इस संसार में अकेले आया हूँ। मैं यहाँ से अकेले ही गमन करूँगा। मैं अकेले खड़े रहना जानता हूँ, बिना किसी व्यसन या अवलंबन के, झुंड से अलग, अपनी आत्मा में निर्भय और सशक्त।

सर्व-एकत्व के अर्थ को जानने के लिए मुझे सिर्फ अकेलेपन की गहराई में जाना होगा।

सभी इस संसार में इस एकत्व को जानने के लिए आए हैं, एक दूसरे के साथ व्यवहार का सेतु बनाने के लिए।

मुझे यह अभिज्ञता मिले कि हरेक प्राणी ज्योतिस्वरूप है, एक सजीव ज्वाला, स्वयं मैं भी। मुझे यह अनुभूति मिले कि आत्मा महिमामय एवं प्रबल है, जिससे मैं विश्वव्यापी हो जाऊँ।



## अतुल्य की खोज में

मानव जीवन एक ऐसा स्थान है जहाँ हम शांति एवं समझ से बढ़ सकते हैं, बशर्ते कि हमें कुछ ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञान रूपी प्रकाश के बिना यहाँ अव्यवस्था बढ़ जाती है एवं हम अपना मार्ग खो सकते हैं। उसी तरह, जैसे रात्रि में हाथों में टार्च के बगैर चलने से ठोकर खाकर नीचे गिर सकते हैं।

मानव जीवन सौंदर्य एवं रहस्य में सिमटा हुआ है। वह हमें अभिभूत करता है, हम पर छा जाता है एवं रोमांचित कर देता है। मन उसका अन्वेषण करने की, अंदर तक झाँकने की, उसके मूल तक पहुँचने की कोशिश करता है, लेकिन वह सफल नहीं हो पाता। यह तो उस बालक के समान है जो अपने हाथ फैलाकर सागर की विशालता के बारे में आश्चर्य से कहता है, 'मैंने इतना सारा जल देखा! वह इतना विशाल था!' उसका यह वर्णन सागर की विशालता के माप को छू भी नहीं सकता। इसी तरह, जब मन इस ब्रह्मांड के रहस्य का वर्णन करता है, तब वह उस बालक के समान ही है। मन न ही इसे प्रकट कर सकता है, न ही इसे समझ सकता है। क्यों? क्योंकि इस जीवंत ब्रह्मांड का रहस्य असीमित है और हमारा मन सीमित है।

इसलिए हमें प्रकाश की, कुछ शक्ति की आवश्यकता है जो मन से परे हो, जो अपरिमित हो। जब हमारे पास वैसा प्रकाश होगा, तभी हम ब्रह्मांड के रहस्य को समझ सकते हैं। तभी हम अपने मन को शिक्षित कर सकते हैं एवं संकल्पनाओं, आकारों एवं परिभाषाओं में जकड़े हुए मन को उनसे मुक्त कर सकते हैं। अगर हम अपने मन को प्रबुद्ध नहीं करेंगे, तो वह एक शिक्षक की भूमिका अदा करने लगता है। भले ही ऐसा अप्रबुद्ध मन उस प्राथमिक शाला के बालक के समान ही है, लेकिन वह ब्रह्मांड के रहस्य को समझने का दावा करता रहता है।

अगर हम स्वयं को इस सीमित मन के मार्गदर्शन में चलने देंगे, तो दो बातें होंगी। बाहरी तौर पर हम रिश्ते-नाते रख नहीं पाएँगे एवं आंतरिक तौर पर शांति से जी नहीं पाएँगे। बाहर से हमारे संबंध विचलित या

असंतुष्ट होंगे और अंतर में निरंतर संघर्ष चलता रहेगा। इनसे कुंठा एवं तनाव बढ़ते जाएँगे।

अब हम प्रकाश की आवश्यकता को पहचानने लगे हैं। यह प्रकाश कहाँ से आता है? गहन आंतरिक अनुभूति से, उन अनुभवों पर ध्यान करने से जो गुरुजनों ने अपने शिष्यों को दिए हैं। इस प्रकाश से हमें आंतरिक तनाव को व्यक्तिपरक दृष्टि से देखने में एवं बाहरी असमंजस को वस्तुपरक दृष्टि से देखने में सहायता मिल सकती है।

लेकिन गुरुजनों के अनुभवों को समझने के लिए एवं अनुभूति करने के लिए हमें कुछ तैयारी की, आधार-कार्य की आवश्यकता है। अपने अंदर आने वाले सत्व के प्रवाह को ग्रहण करने के लिए पात्र को तत्पर रहना चाहिए, अन्यथा प्रवाह से पात्र टूट जाएगा, नष्ट हो जाएगा, पिघल जाएगा और सत्व मिट्टी में मिल जाएगा। ठीक इसी तरह यदि हमारा मन सत्य के लिए तैयार नहीं है, तो वह भयभीत हो सकता है। वह सत्य का सामना नहीं कर सकेगा।

इसलिए नवदीक्षित शिष्यगण सत्य ग्रहण करने के लिए स्वयं को तैयार करते हैं। वे अपने पात्र को सत्व के अनुरूप सशक्त बनाते हैं। इसी उद्देश्य से वे गुरुजनों की शिक्षा को अपने जीवन में सम्मिलित करके आत्मसात कर लेते हैं। ऐसा करने से उन्हें जीवन में शांति मिलती है। इस संसार में वे ऐसी अभिज्ञता से जी सकते हैं जिससे न ही वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं और न ही तनाव महसूस करते हैं। वे स्वयं को या दूसरों को किसी भी प्रकार की पीड़ा, दुःख एवं यंत्रणा नहीं देते हैं।

जिन लोगों को आप इस संसार में बुद्धिमान एवं निपुण समझते हैं, अक्सर वे अंदर से वैसे नहीं होते। यदि आप अपने विचारों को संतुलित रखते हुए निरपेक्ष दृष्टि से उन्हें देखेंगे, तो आपको बोध होगा कि वे अपने जीवन में पीड़ा को अंतर्निर्विष्ट करने के सिवाय और कुछ नहीं करते हैं। ऐसा करते-करते वे एक ऐसे मोड़ पर पहुँच जाते हैं जहाँ इतना दुःख एवं अथाह पीड़ा है कि वे झेल नहीं पाते हैं। उससे बचने के लिए, उससे छुटकारा पाने के लिए वे कई उपाय आजमाते हैं। दुःख को शामक करने वाली दवाइयों का सेवन करते हैं। इनका सेवन इस बात का संकेत है कि

मनुष्य स्वयं को पीड़ा दे रहा है। इस पीड़ा को दूर या कम करने के लिए वह शराब और नशीली दवाइयों जैसी बाहरी चीजों का आश्रय लेता है, या फिर वह भोग और विलास के पीछे भागता है। ये सभी इसी बात की पुष्टि करते हैं कि मनुष्य के अंदर दर्द समाया हुआ है।

अगर आप अंतर्दृष्टि को जागृत करेंगे, तो कम से कम स्वयं को पीड़ा नहीं पहुँचाएंगे। आपको उस कवायद में रहना नहीं पड़ेगा। उस जुलूस से न जुड़कर आप कम से कम ऐसी स्थिति में रहेंगे जहाँ आप दूसरों की मदद कर सकते हैं। अगर आप जुलूस के प्रवाह में बह गए, तो आपके पैर दूसरों के नगाड़े की धुन पर चलेंगे। आप स्वयं की गति के अनुसार नहीं चलेंगे।

पहले पीछे खड़े होकर उस कवायद को देखें। उसके संगीत एवं प्रयाण का हिस्सा नहीं बनें। इन भावनाओं के सहारे स्वयं को भीड़ से अलग करें। उनका उपयोग करके उस बनावटी संसार से बाहर निकलकर सत्य को उसकी वास्तविकता में देखें। यह पीड़ादायक हो सकता है। आप इस तरह देखने के आदी नहीं हैं। आपको कल्पना के संसार में जीने की आदत पड़ गई है। लेकिन पारदर्शिता के बगैर आप आगे कैसे बढ़ पाएँगे?

पिछला पहलू था एकत्व - उस अविनाशी शक्ति पर ध्यान, जो आप स्वयं हैं। जब तक उसके संपर्क में नहीं आएँगे, तब तक स्वयं को सभी प्रकार के भय से मुक्त नहीं कर पाएँगे। जब तक अपने एकाकीपन का अनुभव नहीं करेंगे, तब तक एकत्व का अनुभव नहीं कर पाएँगे।

आज पाँचवें पहलू पर चिंतन करने का दिन है - अन्यत्व-स्वत्व। अन्यत्व यानी जो सत्त्व से अलग है, आत्मा से अलग है स्वत्व अर्थात् स्वार्थ। स्वत्व आपको दो चीजें देखने में मदद करता है: १) अन्य, जहाँ पर आपने स्वयं की गलत पहचान बनाई है या स्वयं को मिश्रित किया है, और २) स्व, आपकी वास्तविक आत्मा। यह अलग करने की प्रक्रिया है। आप वह नहीं हैं जिसके साथ आपने अपनी पहचान बनाई है। आपका असली स्व किसी भी वस्तु के साथ पहचान नहीं बना सकता है। वह अद्वितीय है।

अपने आप से पूछिए, 'वे क्या वस्तुएँ हैं जिनसे मैंने अपनी पहचान बनाई है?' उनको जानने के लिए अपनी प्रतिक्रिया पर गौर कीजिए जब

आपको उन वस्तुओं के बिना जीना पड़ता है। अगर आप किसी वस्तु के साथ अपनी पहचान बना लेते हैं, तो जब वह छिन जाती है, आप गहन पीड़ा का अनुभव करते हैं। उसके खोने में आप नुकसान का एहसास करते हैं, उसके नष्ट होने में आप नष्ट महसूस करते हैं, उसके क्षय में आप क्षय का एहसास करते हैं। प्रत्येक निर्भरता में आप दुःख को आमंत्रित करते हैं।

ध्यान दें कि जब आप किसी वस्तु के साथ अपनी पहचान बना लेते हैं, तब क्या होता है? आप उसे एक विचार में बदल देते हैं। अब आप उस नए विचार के कैदी बन जाते हैं। उसे किसी भी कीमत पर बनाए रखना चाहते हैं। सभी ऐसा ही करते हैं। लोग एक विचार के लिए जान ले लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उसके लिए जान दे देते हैं। देशभक्ति, सांप्रदायिकता, मतांधता - ये और कुछ नहीं, सिर्फ स्वयं को सजा देने के छलावरण हैं। इन विचारों को पकड़े रखकर हम स्वयं को सजा देते हैं। मगर हम संसार में स्वयं को सजा देने नहीं आए हैं। न ही हम नाराज होने के लिए या लोगों से अलग रहने के लिए आए हैं। नाराज रहकर हम स्वयं को सजा दे रहे हैं। इस प्रतिबोध का आशय है पीड़ारहित रहना, एक स्वस्थ मानसिकता में जीना।

चिंतन कीजिए, कितनी बातों से जुड़ जाते हैं आप - जाति, संस्कृति या धार्मिक परिवेश, वस्तुओं का संग्रह, ऐंद्रिक वस्तुएँ, रिश्तेदार एवं मित्र। देखिए कि इनको पकड़े रखने से आप स्वयं ही जाल में फँस जाते हैं। उनको अपना बनाने की कोशिश में आप उनके कैदी बन जाते हैं। स्वयं को सजा देना बंद कीजिए। उस पहचान को रोकिए, बँधनमुक्त बनिए - मुक्त! उन वस्तुओं के प्रति आसक्ति रखने से क्या लाभ जिनका क्षय होने वाला है? अंततः वे वस्तुएँ हमें छोड़ देती हैं या हम उन्हें छोड़ देते हैं। जब ऐसा होता है, तब आंतरिक पीड़ा होती है। क्यों? क्योंकि उनके साथ पहचान बनाकर हम उन्हें अपने अवचेतन की गहराई में रख देते हैं, और जब वे प्रकृति के नियमानुसार चले जाते हैं, तब हमारा आसक्त मन उनकी कमी को महसूस करता है।

सभी प्रकार की स्वयातना से परे जाने के लिए अपने अतुल्य स्वरूप को जानिए। क्या आपका स्व है और क्या नहीं, इस अंतर का अनुभव

कीजिए। अब देखिए कि जो आपका है, उसे आपसे दूर नहीं किया जा सकता, और जो आपका नहीं है, वह कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

इस अंतर्दृष्टि के साथ अपने रिश्तों पर ध्यान करें। उदाहरणतः आपने किसी विशेष व्यक्ति के साथ संबंध जोड़ा है। अगर आप उसे किसी दूसरी युवती के साथ बातचीत करते देखते हैं, तो आपको जलन होती है, दुःखप्रद एहसास होता है। क्यों? क्या चला गया है? कुछ भी तो नहीं गया है। मगर आपके मन ने उस व्यक्ति के साथ अपनी पहचान बना ली है, उसे 'मेरा' समझ लिया है, और चूँकि इस मन को 'मेरा' से आसक्ति है, तो उसे खोने का भय भी है। अगर आपने उस व्यक्ति से किसी रिश्ते का गठन नहीं किया है, तो किसी दूसरे के साथ उसे देखने में आपको कोई दुःख नहीं होगा। आपको ज़रा भी परवाह नहीं होगी। लेकिन जब मन शक्की हो जाता है, तब वह निरंतर इसी विचार में लगा रहता है। सोचता है, 'वह उससे क्यों मिलता है? उसका इरादा क्या है?' जब तक आपका मन इन शंकाओं से घिरा रहेगा, क्या आप दिव्यता पर चिंतन एवं ध्यान कर पाएँगे?

और तो और, अगर आप स्वयं को इस जलन से मुक्त नहीं करेंगे, अगर यह तीन चार दिन तक कायम रहेगी, तो कब्ज पैदा हो जाएगी। खाने को सुगमता से पचाने के लिए संपूर्ण शरीर को आरामदायक ऊर्जा के प्रवाह की आवश्यकता है। जब आप तनावग्रस्त हैं, तब शरीर की कोशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं। जहाँ सिकुड़न होती है, वहाँ पाचन क्रिया काम नहीं करती। कब्ज सूचित करता है कि अंदर हम क्लेश से जल रहे हैं। जलन की यह अग्नि हमारी पाचन क्रिया के सारे रसों को सोख लेती है। लोग यह नहीं सोचते कि ईर्ष्या करने में, दूसरों पर शंका करने में, 'तेरा' और 'मेरा' का भेद करने में वे कितनी ऊर्जा को नष्ट कर देते हैं।

ईर्ष्या के लिए संस्कृत में अग्नि शब्द प्रयुक्त होता है, वह अँग्रेजी के 'एगोनी' और ग्रीक के 'इगोउ' शब्द का समानार्थक है। ईर्ष्या में दोनों हैं - अग्नि एवं जलन। वह जलाती है। जब आप पूरी तरह से अंदर से सिक जाते हैं, पक जाते हैं, तब रस समाप्त हो जाता है। यातना तब होती है जब लोग एक दूसरे के शरीर से आसक्त हो जाते हैं। जब अलगाव या तलाक होता है, तब देखिए क्या होता है? लोग बहुत कठिनाई से रिश्ता तोड़ते हैं।

कहते हैं, 'उस पुरुष ने मेरा जीवन बरबाद किया' या 'उस स्त्री ने मेरा जीना दूभर कर दिया।' आपके जीवन को बरबाद किया है आपकी खुद की सोच एवं विचार-धारा ने, किसी और ने नहीं।

अन्यत्व पर चिंतन करने के लिए अपने शरीर से शुरू करें और कहें, 'यह शरीर मुझसे अलग है। शरीर अन्य है। मैं स्व अर्थात् आत्मा हूँ।' दोनों को एक मत समझें। उनमें जो अंतर है, उसे पहचानिए। जब आप उन्हें एक समझना छोड़ देंगे, तब आप जान पाएँगे कि सहचारिता क्या होती है। तब आप जानेंगे कि 'जो जीवंत है, चेतन है, निराकार है, वह सतत चलायमान ऊर्जा है, वह मैं स्वयं हूँ। जिसका संघटन एवं क्षय होता है, वह अचेतन ऊर्जा है। वह शरीर है।' सचेतन ऊर्जा का संघटन या संगठन या विघटन नहीं होता, मगर अचेतन ऊर्जा प्रत्येक क्षण संघटन एवं क्षय से गुजरती रहती है।

हमारा शरीर एक कोशाणु से गठित हुआ है। कोशाणुओं के विभाजन की प्रक्रिया से शरीर की रचना होती है - एक से दो, दो से चार, चार से आठ, और आगे ऐसे ही। हमारे शरीर का वजन दिन प्रतिदिन बढ़ता रहता है। एक कोशाणु के गुणन, संघटन एवं क्षय से आठ या नौ पाउण्ड का वजन बनता है। एक पल के लिए भी यह प्रक्रिया रुकती नहीं है। यह हमारे जीवन के अंतिम क्षण तक चलती रहती है।

जब हम इस पर ध्यान करेंगे, तो हम इस प्रक्रिया को उसकी समग्रता में देख सकते हैं। किसी भी समय में, जिसका संघटन हुआ है, उसका क्षय होता है। यह कोई नई खोज नहीं है। इसमें स्तंभित होने का कोई कारण नहीं है। जब आप इसे समझ जाएँगे, तब आप किसी भी बात से विस्मित नहीं होंगे। अनजान ही अभिभूत करता है, लेकिन जिसे आप जानते हैं, वह एक तथ्य है, एक कथन है। आप उसे स्वीकार करते हैं।

ध्यान के द्वारा संघटन एवं क्षय की इस प्रक्रिया से स्वयं को अलग करके, अब आप पूछते हैं, 'कौन इस प्रक्रिया को परिचालित करता है? इस प्रक्रिया से परे कौन है?' आपका उत्तर होगा, 'वह मैं हूँ।' 'मैं' इसके मध्य में केन्द्रित है। इसे अपना अनुभव बनाइए, दिन के उजाले की तरह द्युतिमान। तत्पश्चात् आप जान लेंगे कि आपको एक आध्यात्मिक झलक की अनुभूति



मिली है। आपको अभिज्ञता मिलती है, 'मैं वह हूँ जो अविनाशी है। मैं वह हूँ जो अपरिवर्तित है। केवल बाह्य रूप बदलता रहता है।'

चिंतन करते रहिए, 'यह शरीर और कुछ नहीं, मेरी आंतरिक सोच का प्रतिबिंब है।' जो नीच विचार में घिरा हुआ रहता है, उसका शरीर विकृत बन जाता है। जिसके उत्तम विचार हैं, उसका शरीर सुंदर बन जाता है। अगर आपके मन में किसी के प्रति क्रोध या कटुता का भाव है, वह आपके चेहरे पर दिखाई देगा। अगर आप एक स्वचालित कैमरा द्वारा क्रोध के क्षणों में अपनी तस्वीर खींचें, तो आप स्वयं को पहचानना नहीं चाहेंगे।

चेहरे जवान या बूढ़े नहीं हैं, आपकी आंतरिक समझ ही उनको बदलती है। कितने जवान लोग हैं जिनके चेहरे पर निर्दयता है, और कितने वृद्ध हैं जिनके चेहरे कोमल हैं, करुणा से ओत-प्रोत। क्रोधित चेहरा व्यग्र रूप धारण करता है। वह विकृत हो जाता है। शांत चेहरा संतुलित रूप धारण करता है क्योंकि उसके अंदर शांति है। संसार यंत्रणा या पीड़ा नहीं है। पीड़ा आपके स्वयं के असमंजस से है। संसार तटस्थ है। आप उसे जैसा चाहें, वैसे ढाल सकते हैं।

अतः हम देखते हैं कि हमारे शरीर की स्थिति अतीत के ज्ञान का परिणाम है। इसमें किसी दूसरे को दोष देने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ शरीर है और आत्मा है। आपका स्व ही शरीर को परिचालित करता है। इसमें हमारे शरीर का कोई दोष नहीं है कि वह कैसे दिखता है। तंदुरुस्ती, खुशहाली और प्रेम के आंतरिक एहसास से हम शनैः शनैः अपने शुभ विचारों द्वारा अपने आकार में बदलाव लाते हैं। अपने आंतरिक शुभ विचारों का परिणाम अंततः बाहर दृष्टिगोचर होता है।

बाह्य संसार पर गौर कीजिए और आंतरिक संसार की अनुभूति कीजिए। इस तरह आप जान पाएँगे कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अपने शरीर में शुद्ध आनंद के साथ जिएँ; उसे साफ, सुंदर, शांत एवं आरोग्यजनक रखें। यह वाहन किसी स्वपीड़न के लिए नहीं है। जो इस सुंदर वाहन को नष्ट नहीं करता, वह सच्चा संत है, ज्ञानी है। अज्ञानी अपनी समझ को बदलने के बजाय अपने शरीर को यंत्रणा देते हैं। वे अपने शरीर को ऐसे सजा देते हैं मानो वही उनके कष्ट का कारण हो। वे यह नहीं

देखते हैं कि उनका शरीर उनके आदेश पर चल सकता है। सिर्फ आंतरिक बोध को बदलने की आवश्यकता है।

इसीलिए मूल सोपानों में 'शौच' भी माना गया है। अपने शरीर एवं मन को स्वच्छ रखें और आप ईश्वरत्व की तरफ बढ़ेंगे। मैले शरीर, गंदे मुँह और दुर्गन्धित वस्त्र वाला व्यक्ति मुक्ति की राह पर नहीं चल पाएगा। सर्वप्रथम शरीर को स्वस्थ एवं स्वच्छ रखना चाहिए। ध्यान रखिए कि रोम-रोम में आप अपनी ऊर्जा को महसूस कर रहे हैं।

ध्यान रखिए कि आपकी भावनाएँ स्वच्छ हों। अपनी चेतना से गलत इरादों को हटा दें। गपशप को बढ़ावा न दें। अपने हाथों का दुरुपयोग न करें, उनको सेवाकाज में लगाइए।

भोजन करते समय अपने खाने के साथ लय में रहें। संत भोजन के समय मौन धारण करते हुए अपने आप से कहते हैं, 'हे प्रभु! आपके प्रति अभिज्ञ रहने से मैं जान सका हूँ कि मेरा शरीर मुक्ति का निमित्त है। इसीलिए इस निर्दोष एवं स्वीकृत आहार से मैं अपने शरीर को पोषण देता हूँ जिससे मुझे अपनी मंजिल मिल जाए।' इस विचार को ध्यान में रखते हुए आप शरीर को अपने उत्कर्ष के लिए एक सुंदर एवं उपयोगी वाहन बना लेते हैं। अब आप उसे वैसे ही देखते हैं जैसे वह वास्तव में है।

अवलोकन कीजिए, 'मैं वह नहीं हूँ जिसका मैं प्रयोग कर रहा हूँ। मेरे संग्रह की वस्तुएँ मेरे सबसे श्रेष्ठ उपयोग, उत्कर्ष, प्रगति एवं संप्रेषण के लिए हैं।' जब कोई वस्तु आपके पास आती है, तो आप उसे जगह देते हैं। जब वह जाने लगती है, तब जाने देते हैं, तैरने देते हैं। इसमें सींगों को नीचा करके उसे पाने के लिए किसी बैल जैसे झगड़ने की आवश्यकता नहीं है!

जो लोग आपके साथ रहना चाहते हैं, उन्हें अपने साथ रहने दीजिए। जो आपके साथ नहीं रहना चाहते, उन्हें अलविदा कह दीजिए! अगर वे लौटकर वापस आएँ, तब उनका स्वागत कीजिए! बीती बातों की दुश्मनी न रखें, प्रतिशोध न करें। अगर कोई वस्तु आपसे दूर चली गई या जा रही है, तो उसे जाने दें! इस तरह आप एकदम मुक्त हो जाएँगे।

अंततः हर वस्तु को कभी न कभी जाना ही है। यह बात कहने में आसान लगती है, लेकिन जीवन में इसे अपनाना कठिन है। जब परीक्षा की घड़ी आती है, कभी-कभी हम वैसा नहीं कर पाते हैं। हम अलग व्यवहार कर बैठते हैं। एक कुत्ता हड्डी के टुकड़े के पीछे इतना पागल क्यों है? उसमें न तो रस है, न ही मांस। उसमें कुछ भी नहीं है, एकदम सूखा है। लेकिन कुत्ता उसे चबाता ही जाता है, और कभी-कभी इस चबाने की प्रक्रिया में वह अपनी जीभ को काट देता है। रक्त बहने लगता है और हड्डी में लग जाता है। कुत्ता उसे चाटते हुए सोचता है, 'अरे वाह! कितनी मिठास है!' उसे इस खुशी में इतनी मिठास लगती है कि वह पीड़ा की संपूर्ण प्रक्रिया को भूल जाता है। वस्तुओं से बँधे रहना मन की आदत है। नवदीक्षित साधक सांसारिक वस्तुओं को उनके असली रूप में देखते हैं, उन्हें रंगे बिना, विकृत किए बिना। जब आप स्वच्छ दृष्टि से देखते हैं, तब आप वस्तुपरक विरोध या व्यक्तिपरक असमंजस से पीड़ित नहीं होते। आप इन दोनों से मुक्त हैं।

जब आप स्वत्व पर ध्यान करेंगे, तब धीरे-धीरे महसूस करने लगेंगे कि आप जो कुछ हैं, उसकी किसी सांसारिक वस्तु से तुलना नहीं हो सकती। स्वयं से कहिए, 'मैं सक्रिय ऊर्जा के साथ जी रहा हूँ।' जब भी और जहाँ भी आप उस सक्रिय ऊर्जा को देखेंगे, आप उन जीवंत प्राणियों के साथ प्रेम की धारा का अनुभव करेंगे।

जब आप दूसरे मनुष्यों को देखते हैं, तो उनके अंदर की आत्मा को देखिए। जैसे आपने स्वयं के अंदर के 'मैं हूँ' को देखा है, उसी तरह आप उनके अंदर के 'मैं हूँ' को देख पाएँगे। इस तरह आप मोह के सोपान पर नहीं जिएँगे। आप लोगों पर अधिकार करने की, उन्हें अपने 'बटुए' में रखने की कोशिश नहीं करेंगे। वे जैसे हैं, वैसे ही रहने दीजिए। प्रेम के सोपान पर जिएँ, न कि अधिकार के सोपान पर।

अगर आप खरे हैं, तो दूसरे लोग भी खरे होंगे। अगर आप देखते हैं कि कोई रिश्ता खरे तौर पर नहीं बढ़ रहा है, तो उस व्यक्ति को अपने रास्ते पर जाने दीजिए। स्वयं से कहिए, 'मैं यहाँ पर किसी और की पीड़ा को झेलने नहीं आया हूँ।' ऐसा करने से देखिए कि आपके रिश्ते कितने सरल,

सुखद एवं प्रेममय हो जाते हैं, क्योंकि अब घुटन नहीं है। यहाँ बंधन भी नहीं है, यह जीवन से जीवन का असली संप्रेषण है।

स्वयं की वास्तविकता जानते हुए, आप सभी प्राणियों में सत्य के, वास्तविकता के दर्शन करेंगे। अब आप करुणा का अर्थ जान जाएँगे। करुणा किसी मनुष्य, पेड़-पौधे या प्राणी के स्वरूप को नहीं, उसके जीवन को देखती है। एक बार अब्राहम लिंकन ने एक सुअर को कीचड़ में फँसा देखा। उन्होंने अपने चालक से गाड़ी रोकने को कहा। वे कीचड़ में उतरे और सुअर को बाहर निकाला। उन्हें अपने पहने हुए कपड़ों की चिंता न थी। उन्होंने आकार से परे जाकर जीवन की पीड़ा को महसूस किया।

करुणा है स्वयं से कहना, 'अगर मैं उस परिस्थिति में रहता, तो कैसा महसूस करता?' जब आप पीड़ा को देखेंगे, तो आपका हृदय वहाँ जाकर जीवन को बोझ से ऊपर उठाने की कोशिश करेगा। इस तरह, आप जीवन और आकार को एक मानने की अपनी पुरानी आदत से बाहर आ सकेंगे। अब आप आकार को और कुछ नहीं; बल्कि आंतरिक जीवन की बाह्य अभिव्यक्ति के समान देखेंगे।

आप यह भी देखने लगते हैं कि आकारों के इस संसार में कुछ भी नित्य नहीं है - वस्तुओं, भावनाओं और विचारों में भी। हो सकता है कि आप सोचें कि आपके पास बहुत 'आवश्यक' कार्य हैं, लेकिन अगर गहराई से सोचेंगे, तो जीवन जीने और विकास करने के अलावा और कुछ भी जीवन का परम ध्येय नहीं है। राजकोट में एक पुलिस अफसर था जो मुझसे मिलना चाहता था। वह मुझसे कुछ बात करना चाहता था। मैं ज़रा व्यस्त था, अतः मैंने सुझाव दिया कि अगली सुबह मिलें तो उसने कहा, 'कल मुझे बहुत काम है, मुझे एक ज़रूरी मुकदमे की सुनवाई के लिए अदालत जाना है। कृपया करके आज मिलें।' हमने उसी दिन शाम को चार बजे मिलने का निश्चय किया।

कुछ घंटों बाद मेरे एक सहपाठी ने आकर खबर दी, 'उस पुलिस अफसर का देहांत हो गया है।' वह सोच रहा था कि अगले दिन उसे एक बड़े मुकदमे में हाज़िर होना है, लेकिन भाग्य ने उसकी तारीख को बदल दिया।

अतः आपके जीवन का ध्येय क्या है? एक दिन से दूसरे दिन जीते हुए जीवन के साथ पहचान बनाकर प्रतिदिन सभी के प्रति प्रेमभाव के साथ रहना तथा मन में किसी के प्रति कुविचार नहीं रखना। आपके लिए कोई भी मार्ग अवरुद्ध नहीं है। आपके जीवन में नूतन सृजन होता रहेगा। जब आप सोचेंगे, 'इस अनुभव को पीछे छोड़कर मैं उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहूँगा', तब आपकी विवशता एवं जल्दबाजी दूर हो जाएगी। आप प्रतिदिन सुंदर रिश्ते कायम करके बढ़ते जाएँगे, स्वयं के साथ एवं संपूर्ण चराचर के साथ।

### चिंतन के बिंदु

मुझे यह देखने दो कि मैं 'आत्मा' हूँ, मैंने अज्ञान में जो 'स्व' नहीं है, वैसे 'पर' के साथ अपनी भ्रांत पहचान स्थापित की है।

मैंने अपने सीमित मन को क्षणभंगुर वस्तुओं के साथ पहचान बनाने की एवं उनको धारणाओं में परिवर्तित करने की अनुमति दी है। स्वयं को उनसे अनुबंधित करके, मैं बँध गया हूँ। अब मैं उस प्रकाश की ओर मुड़ता हूँ जो मन से परे है, इस भौतिक विश्व से विशाल है। मन की अष्टभुज जकड़ पर उस प्रकाश को डालकर, मैं उसकी पकड़ को ढीला करने का आह्वान कर सकता हूँ। मैं स्वयं को निर्भरता से मुक्त करके जीवन को स्पष्टता से देखना चाहता हूँ। मैं अपने अतुल्य स्व के सौंदर्य की अनुभूति करना चाहता हूँ।

यह संसार यंत्रणा या पीड़ा नहीं है। पीड़ा मेरा अपना असमंजस है, मेरा परिग्रह है। संसार तटस्थ है। अब मैं उसका उपयोग करूँगा - अपने विकास की परीक्षण भूमि के लिए, अपने उत्कर्ष की प्रेरणा के लिए, संपूर्ण चराचर जगत् के समीप पहुँचने के लिए।



## दीपक की लौ

जो व्यक्ति सम्मोहात्मक अवस्था या किसी भी प्रकार की मूर्च्छा में है, वह अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं करता है। क्यों नहीं? क्योंकि उसकी इच्छा किसी और के वशीभूत है। वह किसी और के आदेश पर चल रहा है, सम्मोहन करने वाले के सुझाव पर निर्भर है। इसलिए वह व्यक्ति कार्य तो करता है, लेकिन वह यह नहीं जानता कि वह ऐसा क्यों कर रहा है। अगर आप गौर करेंगे, तो आप यह नहीं बता पाएँगे कि उसके कार्यकलाप स्वेच्छा से उत्पन्न होते हैं या किसी दूसरे के सुझाव से।

ठीक ऐसा ही हमारे जीवन में होता है। हम जिस तरह घूमते-फिरते हैं, वस्त्र पहनते हैं, भोजन करते हैं, बातचीत करते हैं, सोचते हैं और क्रियाएँ करते हैं, वह किसी और प्रकार की मूर्च्छा है। हम अलग-अलग क्रियाओं से गुजरते हैं। हम कई तरह के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। लेकिन क्या हम जान पाते हैं कि हमारे कार्य स्वयं की अभिज्ञता से हो रहे हैं या किसी और के सुझाव से? क्या हम जान पाएँगे कि हम किस दबाव के अनुसार जी रहे हैं - समाज, राजनीति, धर्म, व्यापार द्वारा निर्मित ढाँचों, यानी संसार की अनेक विचार प्रणालियों के अनुसार? क्या हमने बाह्य संसार के प्रभावों को इस तरह आत्मसात कर लिया है कि हमारी सोच, इच्छा, पसंदगी और नापसंदगी, क्रिया और प्रतिक्रिया सभी कुछ इनके दबाव में है? या क्या हमारा जीवन हमारी इच्छानुसार, हमारी अभिज्ञता से चल रहा है?

शायद हम बाहरी प्रभाव एवं स्वयं की इच्छा के बीच का अंतर नहीं समझ पाते हैं। जो कारण हमारी सोच एवं जीवन को रंग रहे हैं, हम उनको अलग नहीं कर पाते हैं। इसलिए हम उसी कार्य को करते रहते हैं। हम उसी पथ पर चलना जारी रखते हैं, उसी प्रक्रिया को गहरा करते जाते हैं, उसी जीवनचर्या को दोहराते हैं।

इसीलिए ध्यान की आवश्यकता है। ध्यान मनुष्य की चेतना को सम्मोहनमुक्त करने की प्रक्रिया है। यह इस शिक्षण का मर्म है। मन, शरीर

एवं इन्द्रियाँ सभी सम्मोहित हैं। उन्हें सम्मोहनमुक्त करने की आवश्यकता है। हमें सीखना चाहिए कि किस तरह चुपचाप खड़े होकर देख सकें।

यह कार्य सुगम नहीं है। ज़रा पीछे खड़े होकर द्रष्टा बनिए। निरपेक्ष भाव से, मगर पैनी दृष्टि से गौर किए बगैर हम पहचान नहीं सकते कि मन, शरीर एवं इन्द्रियाँ किन किन तरीकों से सम्मोहित हो रहे हैं। यह कार्य इतना कठिन क्यों है? क्योंकि यह जन सम्मोहन है। समाज दो तरीके से प्रभावित करता है - जन मूल्यों से एवं आँकड़ों से। जब जन समुदाय कोई कार्य करता है, तो व्यक्ति पर उसका सम्मोहात्मक प्रभाव होता है। उदाहरणार्थ अगर दस व्यक्ति नाच रहे हैं और उसी कक्ष में आप एक कोने में अलग से खड़े हैं, तो यदि आपका नाचने का इरादा नहीं है, फिर भी आपकी इच्छा होगी कि आप भी नाचने लगें। अगर किसी कक्ष में दस व्यक्ति ध्यान कर रहे हैं और आप उसी कक्ष में नाचने के इरादे से आते हैं, तो आप नाच नहीं सकेंगे। व्यक्ति भले ही दृढ़ हो, फिर भी अधिकांश बातों में सामाजिक प्रभाव ज़्यादा सशक्त होता है। इस तरह जन मूल्य एवं रीति-रिवाज बहुमत द्वारा बनाए जाते हैं और अल्पमत को प्रभावित करते हैं।

ये भावनाएँ उन साधकों के लिए हैं जो भिन्न-भिन्न जीवन प्रणालियों से आए हैं, जिनके शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक परिप्रेक्ष्य भिन्न-भिन्न हैं। उन्होंने स्वयं को अभी तक जन सम्मोहन की मूर्च्छा से मुक्त नहीं किया है। ये चिंतन उन्हें इसी मूर्च्छा से मुक्त करने के लिए हैं। इस शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य मानव की चेतना को मुक्त करना है।

छठी भावना में हम दो तत्त्वों के बीच का अंतर करेंगे - शुचि, जो ऊर्ध्व-गत्यात्मक है और अशुचि जो अधो-गत्यात्मक है। हम अपने अंदर बसी इन दोनों प्रक्रियाओं पर चिंतन करें। दीपक की तरह हमारे अंदर कुछ है जो निरंतर ऊपर की तरफ बढ़ता जा रहा है। हम उसे ज्योत कह सकते हैं। हमारे अंदर कुछ और भी है जो नीचे पिघलता जा रहा है। वह मोम है। इन दोनों का अपना अलग स्वभाव है।

ऊपर क्या जा रहा है? वह हमारी चाह है - कुछ शुद्ध एवं सुंदर, कुछ ऊँचा एवं कुलीन, कुछ सूक्ष्म एवं दिव्य को पाने की। हममें से प्रत्येक को इसकी तलाश है। इसीलिए हमें साधक कहा गया है, जिसका अर्थ है

आकांक्षा करने वाला, न सिर्फ कम में संतोष करने वाला। हम चाहते हैं कि पथ का हर कदम हमें और आगे ले जाए।

दस वर्ष पूर्व आपने जो सपना देखा था, शायद अब वह पूर्ण हो गया है। अब आप चाहते हैं कि आपको कुछ अधिक मिले। आप अधिक आगे बढ़ना चाहते हैं। यह 'अधिक' उस ऊर्ध्व-गत्यात्मक तत्त्व का स्वभाव है। आप जहाँ भी जाएँगे और जो कुछ भी पाएँगे, यह 'अधिक' आपके साथ रहेगा। वह अंत तक रहेगा जब तक आप अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त न कर लें। आप उस ऊँचाई पर अब तक नहीं पहुँचे हैं, इसीलिए उसकी चाह आपके साथ है।

अतः शुचि पर ध्यान कीजिए और स्वयं से पूछिए, 'मेरे अंदर क्या है जो ऊपर बढ़ रहा है? जीवन का शुद्ध, अद्वितीय सत्त्व क्या है? मुझे इसे उन तत्त्वों में से एक नहीं समझना चाहिए जो बनते और नष्ट होते रहते हैं।'

खोज कीजिए, 'मेरे विचारों एवं भावनाओं की गुणवत्ता क्या है? मेरे कंपनों की आवृत्ति क्या है? क्या वे मुझे उठा रहे हैं या नीचे गिरा रहे हैं? क्या वे मेरे अंदर के भार को बढ़ा रहे हैं या मेरे प्रकाश को प्रकट करने में कार्यरत हैं?'

यह अत्यावश्यक है कि हम विवेक के द्वारा इन दोनों के बीच अंतर कर सकें। अगर यह विवेक दृष्टि नहीं है, तो खतरा बना रहता है कि हम अपने शुद्ध सत्त्व की अलग पहचान न करते हुए उसे गिराने वाले भौतिक आवरण की परत ही समझ लेंगे। यदि आत्मचेतना का प्रकाश नहीं है, तो मन हमें भ्रमित करता रहता है। सम्मोहन की मूर्च्छा का ऐसा प्रभाव होता है। हम अपने आत्मस्वरूप की अनुभूति किए बिना ही जीवन जीते हैं। इसे आत्मप्रवंचना कहते हैं। स्वयं की गलत सोच आपको जितना भ्रमित कर सकती है, उतना कोई और दूसरा नहीं कर सकता। शायद आप सोचें, 'मेरे पास सब कुछ है। मैं जो भी चाहूँ, खरीद सकता हूँ। मैं खुश हूँ।' किंतु अचानक दुःख रेंगता हुआ आ जाता है और आपका मन निराश हो जाता है।

अतः हम अपनी उदासीनता को समझने के लिए कुछ समय निकालते हैं, उस भार को समझने के लिए जो हमें चलने नहीं देता। हम



स्पष्ट देखते हैं कि हमारे अंदर क्या है जो छाया, उदासी एवं गहन इच्छाओं से ढका हुआ है। अन्यथा, वे नकारात्मक कंपन जो हमारे अंदर की गुरुत्वाकर्षण प्रकृति से बने हैं, कर्म या पुद्गलों को हमारी तरफ आकर्षित करते रहेंगे एवं हमारी दृष्टि को धुंधला करते रहेंगे। जब तक हम अपने विचारों को बिना किसी लगाम के इधर-उधर दौड़ने देंगे, तब तक हमारा मन इन अवांछनीय तत्त्वों के आगमन से प्रभावित होता रहेगा।

अपने विचारों को दबाने के बजाय उनका निरीक्षण करें। क्या आप उदासी एवं अपराध भाव से बाहर आना चाहते हैं? अगर हाँ, तो देखिए कि दुःख कैसे काम करता है। देखिए कि वह कैसे कुछ दूरी पर एक कोने में खड़ा होकर आपके आने की राह देखता है, कैसे वह अचानक आपको सोचने का अवसर दिए बगैर आपके मन पर हावी हो जाता है। आपकी विवेक बुद्धि इससे भ्रमित हो जाती है। एक पल पहले आप मुस्कान से खिल रहे थे, दूसरे ही पल आप उदास और हताश हो गए। क्या हुआ? आपकी खुशी कहाँ चली गई? यह उदासी कहाँ थी? यह आपके मन में छिपी हुई थी।

जब दुःख आप पर हावी हो जाता है, आपके पास उससे बाहर आने की शक्ति नहीं रहती। आप नीचे ही नीचे गिरने लगते हैं। आपने गौर किया होगा कि जब दुःख के बादल घिरे हुए हैं, तब भले ही आप मंत्रोच्चारण या प्रार्थना करें, आप स्वयं को उस एहसास से बाहर नहीं निकाल सकते। उन क्षणों में आपका ज्ञान कहाँ चला जाता है? वह एक कोने में पड़ा रहता है। हालाँकि हमारे मस्तिष्क में ज्ञान के अनेक उद्घरण भरे हुए हैं, क्या अवसाद के समय में हम इनमें से किसी का उपयोग कर पाते हैं? नहीं!, हम नहीं करते। हमने पुस्तकें पढ़ी हैं कि कैसे खुश रहें, मगर क्या वे हमारी मदद कर पाती हैं? नहीं! ऐसा प्रतीत होता है कि हम उनके ज्ञान का उपयोग तभी कर पाते हैं जब हम खुशहाल मनोदशा में होते हैं। मगर आवश्यकता तो इस बात की है कि हम अपने ज्ञान एवं अंतर्दृष्टि का उपयोग अवसाद के क्षणों में करना सीखें। हमें उनका स्मरण करना चाहिए एवं उन्हें तुरंत बाहर लाकर उनका उपयोग करना चाहिए।

हम अपने ज्ञान का उपयोग क्यों नहीं करते? क्योंकि बौद्धिक जानकारी एवं भावनात्मक एहसास, दोनों अलग-अलग दिशाओं में काम करते हैं। उदाहरणार्थ, हमारी बुद्धि जानती है कि जीवन में जो भी आता है, उसे एक न एक दिन जाना है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि सभी व्यक्ति एक यात्रा पर हैं, आगमन एवं प्रस्थान कर रहे हैं। लेकिन जब वैसी घटना हमारे जीवन में घटती है, तब क्या हम उसे झेल पाते हैं? बुद्धि से हम उसे समझते हैं, लेकिन भावना के स्तर पर हमारी कैसी प्रतिक्रिया होती है? ध्यान के द्वारा हम उस ज्ञान को अपनी भावना में समाविष्ट करते हैं। अपनी भावनाओं की अनुभूति से हम अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाते हैं। अपने दृष्टिकोण के बदलने से हम किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। अब हमारे लिए कुछ भी अकस्मात या पीड़ादायक नहीं होता। समझ हमारे अनुभव का अंग बन गई है।

ज्ञानी संसार में रहता है, मगर उसका बनकर नहीं। वह पूर्ण अभिज्ञता से रहता है। एक बौद्ध कथा है जो इसकी पुष्टि करती है। एक प्रख्यात खड्गधारी अपनी मरण शय्या पर था। उसके पुत्र, मातजुरा ने पूछा, 'पिताजी आपकी अंतिम इच्छा क्या है?'

पिता ने जवाब दिया, 'हे पुत्र, मेरा स्वप्न था कि तुम सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी बनो, लेकिन मैं उसे साकार नहीं कर पाया।'

मातजुरा ने जवाब दिया, 'मेरी भी यही चाह थी, लेकिन इसके लिए कोई सही शिक्षक नहीं मिले, न ही आपके पास मुझे सिखाने का समय था।'

पिता ने कहा, 'मेरी चाह इतनी प्रबल है कि मैं उसे पूर्ण करने के लिए तीन साल और जीऊँगा। हालाँकि मैं मरण शय्या पर हूँ, मगर मरूँगा नहीं।'

पुत्र ने पूछा, 'मेरे शिक्षक कौन होंगे?' पिता ने उसे बैँजो के पास भेजा, जो उस समय के जाने माने शिक्षक थे।

तरुण बैँजो के पास गया और प्रणाम करके कहने लगा, 'मैं आपके पास शिक्षा ग्रहण करके एक कुशल खड्गधारी बनना चाहता हूँ। मैं स्वयं

को इस कार्य के लिए संपूर्णतः समर्पित करने के लिए तैयार हूँ। इस कला में प्रबुद्ध होने के लिए कितने साल लगेंगे?’

शिक्षक ने जवाब दिया, ‘बारह साल।’

‘बारह साल?’ तरुण को विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा, ‘अगर मैं दिन का हर पल इस शिक्षा में व्यतीत करूँ और सिर्फ तीन घंटे सोऊँ, तो कितने साल लगेंगे?’

‘तो फिर बीस साल लगेंगे!’ तरुण कुछ भी नहीं समझ पाया।

तब शिक्षक ने समझाया, ‘जो जल्दबाजी में है और केवल परिणाम पर ही नज़र रखता है, पद्धति पर नहीं, उसे परिणाम नहीं मिलता है। मैं जीवन के लिए पढ़ता हूँ, परिणाम के लिए नहीं। अतिकुशल खड्गधारी बनने का अर्थ है जागृत रहना, किसी को मारे बगैर खुद के बचाव का ज्ञान सीखना। तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि तलवार में मित्रता की धार नहीं है। यदि मैं सिर्फ परिणाम के लिए सिखाऊँगा, तो तुम्हारे टुकड़े हो जाएँगे। इसका क्या फायदा? मैं इससे ज्यादा तुम्हारे जीवन की खुशहाली चाहता हूँ।’

अब तरुण को बात समझ में आई। उसने कहा, ‘गुरुजी, मैं समय के बारे में सोचना छोड़ दूँगा। मेरा आपसे विनम्र निवेदन है कि मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार करें। मैं आपसे ज्ञान ग्रहण करने के योग्य बनूँगा।’

उस दिन से वह तरुण उस शिक्षक का शिष्य माना गया। अब चूँकि उसका मन शांत था, उसे जागरूकता के लिए विशेष प्रशिक्षण मिल रहा था। इस प्रशिक्षण का प्रथम कार्य था अपने शिक्षक की सेवा। वह उनके कपड़े धोता, माली का काम करता, भोजन पकाता, तलवारों को सही तरीके से रखता एवं अनेक अन्य बातों का ध्यान रखता। छह महीने तक उसे एक पल के लिए भी तलवार को पकड़ने या प्रयोग करने की शिक्षा नहीं दी गई, लेकिन वह धैर्यवान था।

एक दिन जब वह बगीचे में काम कर रहा था, उसके शिक्षक ने एक लकड़ी की तलवार से उसपर वार किया और कहा, ‘आज से मैं अचानक

तुम्हारे पास आऊँगा। अगर तुम जागृत रहे, तो मैं तुम पर वार नहीं करूँगा। अगर तुम जागृत नहीं रहे, तो मैं वार करूँगा। इससे कठिन मार तो अभी बाकी है।’

‘हाँ गुरुजी,’ शिष्य ने जवाब दिया। वह एक गंभीर एवं उत्सुक शिष्य था। वह जानता था, ‘मेरे शिक्षक दिखने में कठोर हैं, लेकिन अंदर से कोमल हैं। मैं नहीं जानता कि वह मुझे क्यों चोट पहुँचा रहे हैं, लेकिन ऐसा करने में भी उनका कोई न कोई नेक इरादा होगा।’

अब वह शिष्य किसी भी समय में किसी भी दिशा से वार पड़ने की की संभावना के लिए तैयार रहने लगा। इस तरह से वह निरंतर चौकन्ना एवं पूर्ण तत्पर रहने लगा। जैसे ही शिक्षक अपने म्यान पर हाथ रखते, वह जागृत हो जाता था और उनकी तरफ देखने लगता।

तत्पश्चात् बैजो ने उससे कहा, ‘अब तुम्हारे प्रशिक्षण का दूसरा भाग शुरू हो रहा है। मैं रात्रि में आऊँगा और अगर तुम नहीं जगे, तो मैं वार करूँगा।’ अब रात्रि में भी वह शिष्य अपने शिक्षक के आने से पूर्व ही जान जाता था। दिन और रात, वह सतर्क रहता था। उसके मन में अन्य कोई इच्छा नहीं रही। उसका संपूर्ण अस्तित्व जागरूकता के अलावा और कुछ नहीं था।

दो वर्ष के उपरांत एक रात को शिक्षक आए, वार करने के लिए नहीं, बल्कि उसे देखकर मुस्कराए और प्रशंसा करने लगे, ‘अब तुम सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी हो!’

‘लेकिन आपने तो मुझे कुछ भी नहीं सिखाया है!’ शिष्य ने तर्क किया।

‘तलवारबाजी सीखना कोई बड़ी बात नहीं है,’ शिक्षक ने समझाया। ‘वह तो मैं तुम्हें एकदम कम समय में सिखा सकता हूँ, लेकिन तलवार किस दिशा से आ रही है, यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है। जागरूक रहना सब से बड़ी बात है। भावावेग, आदतें, निष्क्रियता एवं आलस्य से ऊपर उठने में ही असली बहादुरी है। अब संसार में कहीं भी चले जाओ। कोई भी तुम्हें जीत नहीं सकता क्योंकि गहरी नींद में भी तुम भान नहीं खोते हो। तुम्हें सिखाने का मेरा ध्येय पूर्ण हुआ। वह था तुम्हें जागृत करना।’

जीवन में घटनाएँ आती हैं, कंपनों का स्पंदन होता है, पूर्व कर्म चोट पहुँचाते हैं। अगर हम जागरूक नहीं हैं, तो इनकी वजह से हम डगमगा सकते हैं। लेकिन अगर हम जागरूक हैं, तो इन्हें चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। हम अपने अंदर छिपी हुई अनंत शक्ति के स्रोत से उनका सामना करते हैं। हमें उस शक्ति को जानना चाहिए। कैसे जानें? जीवन के प्रति जागरूकता के द्वारा। जीवन के प्रति सम्मान से हमारी जागरूकता का निर्माण होना चाहिए। तत्पश्चात् सारी क्रियाएँ उस सम्मान की दिशा में गतिमान हो जाती हैं।

जो जागृत है, उसे कुछ भी बाँध नहीं सकता, अवरुद्ध नहीं कर सकता। काम करते हुए, सोते हुए, भोजन करते हुए, बातचीत करते हुए, आपको भान है कि आपकी प्रत्येक क्रिया सम्मान एवं प्रेम का प्रतीक है, अंतर के उस ज्ञाता के सम्मान से प्रेरित है जो जागृत है। अब आप जो भी करते हैं, मोहित हुए बिना या उस क्रिया से पहचान बनाए बिना अपने उत्कर्ष एवं मुक्ति के लिए करते हैं। आप यह देखेंगे कि आपके इरादे साफ हैं, सिर्फ विकास के लिए, सिर्फ जीने के लिए और दूसरों को जीने में मदद करने के लिए। इस तरह आप लोभ एवं जन मूल्यों की मूर्च्छा से स्वयं को मुक्त करके स्वयंभूत बनने की शक्ति और आनंद की अनुभूति करते हैं।

अब तक हमने देखा कि अनभिज्ञ मन अवसाद जैसे भारी कंपनों को अपने ऊपर हावी कर देता है एवं हमारे जीवन में गुरुत्वाकर्षण का कार्य करता है। अब आगे हम अशुचि के अर्थ का विशिष्ट रूप से विश्लेषण करेंगे। शरीर स्वयं में अशुचि है क्योंकि विघटन उसका स्वभाव है। अंततः हमारे शरीर के सारे कोशाणुओं का क्षय होता है और उसके समस्त घटक अपने सरल आकार में लौट जाते हैं।

हमारे शरीर के तत्त्व क्या हैं? पूर्वजों ने उन्हें पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु कहा है। जैसे, दाँत और नाखून पृथ्वी से संबंधित तत्त्व हैं, खून और थूक जल से, शरीर की गर्मी एवं नसों की प्रणाली अग्नि से एवं श्वास लेने की प्रक्रिया वायु से संबंधित है। इन चार तत्त्वों से ही प्रत्येक मानवीय आकार का संघटन होता है। ये सभी में एक समान हैं। हमारे पूर्व विचारों, भावनाओं, शब्दों एवं क्रियाओं के पुद्गल जिन्हें हम कर्म कहते हैं, उनके

अनुसार ये तत्त्व अलग-अलग रूप एवं रंग धारण करते हैं। अनगिनत डिजाइन एवं अद्वितीय नमूने दिखाई देते हैं, लेकिन उसके संघटक नहीं बदलते। प्रत्येक शरीर में वही पृथ्वी है, वही जल है, वही अग्नि है, वही वायु है।

ऐसा कैसे है कि ये चार तत्त्व इतने अलग-अलग आकार धारण करते हैं? इसका जवाब कंपनों के नियम में मिलता है। आपके जीवन की प्रत्येक क्रिया से कंपन पैदा होते हैं जो ब्रह्मांड में से इन भौतिक तत्त्वों को आकर्षित करते हैं जिनसे शरीर का आकार बनता है। इस तरह, आपके जीवन, विचार और आचार के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु के मूलभूत तत्त्वों में से भिन्न-भिन्न रंगों एवं रूपों का निर्माण होता है। प्रत्येक व्यक्ति में जो अंतर है, विशिष्टता है, वह लोगों के इरादे, भावनाएँ एवं जीवन शैलियों की विविधता का प्रतिबिंब है।

जब आपको कंपनों के इस नियम की अभिज्ञता मिलेगी, तब आप भय और अपराध-बोध के एहसास से मुक्त होने लगेंगे। अपने जीवन में होने वाले कार्य-कारण को आप संतुलित दृष्टि से पहचानने लगेंगे। साथ ही, आप अपने स्वभाव के लिए दूसरों को दोषी ठहराना छोड़ देंगे। आप झूठे अभिमान एवं झूठी नम्रता की आदतों को मिटा देंगे, दोनों ही आत्मा के अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। आप ऐसे सोपान पर पहुँच जाएँगे जो विकृतियों से मुक्त है।

इस तरह ध्यान करके आप अपनी जागरूकता में वृद्धि कर सकते हैं, 'मेरा आकार मेरी सोच का प्रतिबिंब है। उसके विरुद्ध झगड़ा करने की, शिकायत करने की या किसी और के आकार की इच्छा करने की न तो आवश्यकता है, न ही समय है। जो भी मेरे पास है, मुझे वह स्वीकार है। मैं अपने उत्कर्ष के लिए उसका उपयोग कर सकता हूँ। अगर इससे लोग आकर्षित नहीं होंगे, तो कोई बात नहीं। अब मैं अपने इस आकार से जनसेवा करूँगा। इस तरह मैं अपने सभी आकारों से मुक्त हो जाऊँगा। मैं जन्म-मरण के चक्र को अंत करने के पथ पर हूँ। मैं मुक्ति के पथ पर हूँ, अपने ध्येय तक पहुँचने वाला हूँ।'

अक्सर जब कभी आप किसी सुखद चेहरे या मनमोहक आकार की तरफ देखते हैं, तो आपका ध्यान उस दिशा में बाँट जाता है। जब आप इस तरह से किसी ओर आकर्षित होते हैं, वह सम्मोहन या अस्पष्ट सोच का असर ही है। जो भी आपको स्वयं से, अपनी आत्मा से परे ले जाता है, किसी वस्तु या व्यक्ति को अपने अधीन करने के लिए, जकड़ने के लिए, वशीभूत करने के लिए, वह बाहरी प्रभाव ही है। वह प्रभाव तभी कम होगा जब आप अपने अनुभव में देख सकेंगे कि आकारों वाले संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसपर आप हमेशा निर्भर रह सकते हैं।

इस तरह की सम्मोहनात्मक भाव-समाधि क्यों होती है? क्योंकि आपको अपने शरीर से अत्यधिक मोह है। इस निर्भरता को भंग करने के लिए आपको शरीर के घटक तत्वों को उनके वास्तविक रूप में देखना होगा। अन्यथा, मन और इंद्रियाँ परस्पर उलझते रहेंगे और आपको भ्रमित करते रहेंगे।

अब आइए, उस प्रक्रिया को कुछ विस्तार से समझें जिसकी वजह से अनजान मन प्रभावित होता है। उस व्यक्ति को देखिए जिसकी नज़र किसी सुंदर चेहरे की तरफ आकृष्ट हुई है, उसकी सभी इंद्रियाँ उस ओर झुक गई हैं। उसका मन सोचने लगता है कि उस सुंदरी से कैसे मिले, और वह इस सुंदरी को लेकर योजनाएँ बनाने लग जाता है। यदि वह अपने आपको इस तरह परिचालित होने देगा और अपने विचारों या व्यवहारों पर लगाम नहीं लगाएगा, तो यह विचार प्रक्रिया जारी रहेगी। इस नई सुंदरी की तुलना में उसे अपना वैवाहिक जीवन और परिवार फीका और अरोचक लगने लगेगा। उसका मन कहीं और बस गया है। अतः वह अपनी सारी शक्ति इस नूतन आकर्षण को प्राप्त करने में लगा देगा। आप देख सकते हैं तलाक का कारण आकर्षण का यही बीज है जो उसके मन में बस गया है।

मन इस इच्छारूपी बीज को बढ़ाने के लिए हर संभव बहाना ढूँढता रहता है। यह व्यक्ति जो पहले अपनी पत्नी से उम्मीद करता था कि वह उसका ध्यान रखते हुए पूछेगी, 'आपने आज क्या किया था? आज आप कहाँ गए थे?' अब इन्हीं प्रश्नों को सुनकर झल्ला उठता है। जब उसके मन ने उसके साथ खिलवाड़ करना शुरू नहीं किया था, तब यही प्रश्न सुनकर

उसे लगता था कि उसकी पत्नी उसके कामों में रुचि ले रही है। वही व्यक्ति अब सोचता है, 'मेरी पत्नी मेरे निजी मामलों में दखल दे रही है, वह मेरी उन्नति के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दे रही है।'

जब कोई व्यक्ति आकर्षण के इस बीज को बढ़ने देता है, तो यह जल्द ही एक अपतृण में बदल जाता है। वह बढ़-चढ़कर उसके पूरे जीवन पर हावी हो जाता है। वह समझ नहीं पाता कि आकर्षण का यह बीज निर्भरता के अलावा कुछ भी नहीं है, सिर्फ शरीर का मोह है।

जब आप समझ जाते हैं कि सम्मोहनात्मक भाव-समाधि किस तरह अनजान मन पर हावी होकर उसमें शरीर की संज्ञानता भर देती है, उसे आकर्षण अथवा विकर्षण की ओर बढ़ा देती है, तब आप जान जाते हैं कि शरीर को दीपक की लौ के समान क्यों देखना चाहिए? शरीर के साथ अत्यधिक मोह को तोड़ने के लिए संत जन जैन धर्म के उन्नीसवें तीर्थंकर, मल्लीनाथ द्वारा सिखाए गए पाठ पर चिंतन करते हैं। ये पहले मल्ली नामक एक नारी थी।

मल्ली एक सुंदर राजकुमारी थी जो विदेह नामक देश में रहती थी। बचपन से ही सभी उसकी खूबसूरती, उसके उजले रंग-रूप, उसके शांत स्वभाव की प्रशंसा करते थे। जब वह अठारह साल की हुई, तो कविगण उसकी खूबसूरती पर कविताएँ लिखने लगे और चित्रकार उसके चित्र बनाने लगे। सभी राजकुमारी मल्ली की ही बातें करना पसंद करते थे।

अपनी यात्राओं के दौरान व्यापारी और मंत्री, सुनार और शिल्पकार जहाँ कहीं जाते, राजकुमारी मल्ली की अनुपम सुंदरता की खबर उस प्रदेश में फैलाते और इस तरह दूर-दूर के राजाओं और राजकुमारों तक मल्ली की ख्याति फैल गई। एक ने उसे 'इस सृष्टि की सबसे आश्चर्यजनक रचना' घोषित किया, दूसरे ने उसे 'टहनी पर झुकते हुए ताजे अंगूर' कहा। किसी और ने 'सफेद गुलाब की पंखुड़ियों की वर्षा' से उसकी तुलना की और एक यायावर साध्वी ने कहा कि मल्ली 'संध्याकालीन तारे' के समान है। जैसे ही छह पड़ोसी राज्यों के राजाओं ने मल्ली की सुंदरता के बारे में सुना, उनमें से हर कोई उससे विवाह करने के लिए उत्सुक हो गया। प्रत्येक ने



विदेह के राजा के पास मल्ली का हाथ मांगते हुए संदेशवाहक के हाथों पत्र भेज दिए।

सर्वप्रथम पहुंचनेवाले संदेशवाहक ने जो पत्र दिया, उसमें लिखा था, 'मैं आपकी पुत्री से विवाह करने के लिए तत्पर हूं, और इसके बदले में आप जो कुछ भी कहेंगे, उसे करने के लिए तैयार हूं। लेकिन यदि आप मेरे इस प्रस्ताव को नहीं मानेंगे, तो हमारे परस्पर राज्यों में युद्ध छिड़ जाएगा।' दूसरा संदेशवाहक भी इसी तरह का पत्र लेकर आया। एक ही महीने में पड़ोस के छह आसक्त राजाओं से इसी तरह के पत्र आ गए। इन छह संदेशवाहकों से एक तरह के पत्र पाकर राजा कुंभक चिंतित हो उठा और उसने अपने पहरेदारों को बुलाकर सभी संदेशवाहकों को निकाल देने की आज्ञा दी।

अतः ठुकराए गए सभी छह राजाओं ने परस्पर सलाह करके विदेह पर एक साथ चढ़ाई करने का निर्णय लिया। वे अपनी सेनाएँ लेकर विदेह की सरहद पर आ पहुंचे। जब वे विदेह के राजा के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे, उनके सैनिकों ने विदेह के छोटे राज्य को चारों ओर से घेर लिया और विदेह के राजा को बहुत ही नाजुक स्थिति में डाल दिया। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। न तो वह तय कर पा रहा था कि अपनी पुत्री का विवाह किस राजा से संपन्न कराए, न ही उसकी छोटी सी सेना इतनी शक्तिशाली थी कि हमलावरों को पछाड़ सके।

मल्ली ने अपने पिता की परेशानी भाँप ली और उनसे कहा, 'पिताजी, आप परेशान क्यों हो रहे हैं? चिंता करने का कोई कारण ही नहीं है। इनमें से प्रत्येक राजा के पास संदेश भेज दीजिए कि मैं उससे शादी करने के लिए तैयार हूँ।'

'क्या कह रही हो, बेटी?' राजा कुंभक ने कहा, 'तुम शादी करने के लिए तैयार हो? लेकिन तुम किससे शादी करोगी? यहाँ तो छह-छह हैं!'

'उसकी आप चिंता न करें,' मल्ली ने इत्मीनान से कहा, 'प्रत्येक राजा को मेरे महल में पंद्रह दिन बाद आने को कहें और यह भी कहें कि मैं अपनी पुत्री का हाथ आपके हाथों में देने के लिए तैयार हूँ।'

‘सभी राजाओं को ऐसा पत्र भेज दूँ?’ मल्ली के पिता ने आश्चर्य से पूछा।

‘हाँ,’ मल्ली ने कहा, ‘छहों को, लेकिन प्रत्येक राजा को यही लगे कि यह प्रस्ताव केवल उसे भेजा गया है। प्रत्येक राजा यही समझे कि केवल उसे ही बुलाया गया है!’

मल्ली की आँखों में विश्वास की लौ देखकर और उसकी वाणी की दृढ़ता को सुनकर राजा कुंभक समझ गए कि मल्ली सोच-समझकर ही यह बात कह रही है। इसलिए उसने उसके कहे अनुसार सभी छह राजाओं के पास गुप्त रूप से मल्ली का संदेश भिजवा दिया।

पंद्रह दिनों की अवधि बीत गई। अगली रात को छह के छह राजा मल्ली के द्वार पर आ पहुँचे। जब उन्होंने एक-दूसरे को देखा, उनके हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला भड़क उठी। प्रत्येक राजा ने यही सोचा था कि केवल उसे ही निमंत्रण मिला है। प्रत्येक को अब अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए की गई मेहनत के निष्फल होने की, अर्थात् मल्ली को पत्नी के रूप में न मिल पाने की पीड़ा सताने लगी।

तभी राजकुमारी मल्ली ने द्वार खोल दिया। उसने सभी राजाओं को अपने कक्ष में आने के लिए कहा। वहाँ उन्हें मल्ली की एक सुंदर मूर्ति रखी हुई मिली। मूर्ति हूबहू मल्ली के जैसी थी। मूर्ति का कद भी मल्ली के जितना ही था और वह स्वर्ण की बनी हुई थी। वह इतनी आकर्षक थी कि उसे देखकर राजाओं की आँखें चकाचौंध हो गईं। वह मल्ली की शतप्रतिशत प्रतिमूर्ति थी और एकदम जीवंत लग रही थी।

इस मूर्ति के पास खड़े होकर राजकुमारी मल्ली ने राजाओं से कहा, ‘आप सभी का स्वागत है! तो आप सभी यहाँ आ ही गए, क्यों?’ राजाओं ने धीमे स्वर में ‘हामी’ भरी। मल्ली ने प्रतिमा के पीछे एक कुंजी को दबाया जिससे उसके ऊपर का ढक्कन खुल गया। अचानक इतनी तेज बदबू निकली कि सभी राजा परेशान हो गए। वे इस दुर्गंध को सहन न कर सके और पूछ बैठे, ‘यह कैसी दुर्गंध है?’

‘ओह, यह तो कुछ नहीं है!’ मल्ली ने इत्मीनान से कहा। ‘जब मैंने सुना कि आप सब मेरा हाथ जीतने के लिए आ रहे हैं तो मैंने सोचा, ‘इन सब का स्वागत कैसे करूँ? ये सब किससे शादी करना चाहते हैं?’ मैं जानना चाहती थी, ‘क्या ये सचमुच मुझसे शादी करना चाहते हैं या मेरे शरीर से?’ इसलिए हर बार जब मैं भोजन करती, मेरे भोजन का एक ग्रास इस प्रतिमा के अंदर भी डाल देती। ऐसा करते हुए मात्र पंद्रह दिन ही हुए हैं, इतने में ही वे भोजन के कण सड़कर ऐसी दुर्गंध दे रहे हैं।’

एक तरफ मल्ली के अपूर्व सौंदर्य से राजाओं का होश उड़ गया, और दूसरी ओर दुर्गंध के कारण वे परेशान भी हो रहे थे। प्रिय और अप्रिय दोनों के इस आघात को वे झेल नहीं पा रहे थे! इस झमेले में वे सोचने लगे कि वे यहाँ आए ही क्यों?

फिर राजकुमारी मल्ली ने उनसे कहा, ‘आइए, इस कमरे से बाहर कहीं चलते हैं। मेरे पास यहाँ बैठिए। आप छह लोग मेरी ओर क्यों आकर्षित हैं? क्या यह मात्र मेरे सौंदर्य के कारण है या कुछ और भी है? अब आप जान गए हैं कि सौंदर्य तो त्वचा की तरह बहुत ही छिछला होता है। आप इस शरीर के घटकों के सड़ने से पैदा होनेवाली दुर्गंध को सह चुके हैं और वह आपको बिलकुल ही पसंद नहीं आई। आपको यहाँ खींच लानेवाली कुछ और बात भी है। असल में इसी ने आपको यहाँ आकर्षित किया है, मेरे शरीर ने नहीं। आँखें बंद करें, ध्यान करें और अपने आप को देखें।’

निशब्दता के उस पल में उन सबके मन में एक झलक कौंध गई। उन्होंने देखा कि किसी पूर्व जीवन में वे सातों जन एक साथ रहे थे। वे सुखद जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनमें आध्यात्मिक अभिरुचि भी थी। लेकिन वे सभी किसी मोह में जकड़े हुए थे जिसे वे समझ नहीं पा रहे थे। वह किसी प्रकार की बची हुई निर्भरता थी। इसके कारण उनमें से प्रत्येक को एक बार फिर जन्म लेना पड़ा। अन्यथा, उन्हें उसी जीवन में मुक्ति मिल गई होती।

जैसे ही उन्होंने यह झलक देखी, उन्हें मल्ली की बात तुरंत समझ में आ गई। मल्ली कह रही थी, ‘हम सभी प्रकाश के मार्ग पर हैं, लेकिन हमारे

पूर्व जन्म में हम उसकी झलक भूल गए। कुछ क्षण के लिए हम अंधे हो गए। इसीलिए हमें यह जन्म लेना पड़ा।’

अब राजाओं ने उससे कहा, ‘अब हम चाहते हैं कि आप ही हमारा मार्गदर्शन करें। आप हमारी गुरु हैं। हम जन्म-मरण के इस चक्र का अंत करना चाहते हैं।’

तब मल्ली ने कहा, ‘हम जो आकर्षण महसूस करते हैं, वह शरीर के प्रति नहीं, बल्कि आत्मा के प्रति है। मानव जीवन की यात्रा में आत्मा हमेशा हमारे साथ रहती है। मगर इन दोनों को एक नहीं समझना चाहिए। दोनों की ही भिन्न-भिन्न प्रकृति है। अतः आइए, इस जीवन का उपयोग आत्मा को प्रकट करने के लिए, अपनी अभिज्ञता को शुद्ध करने के लिए, मुक्ति के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए करें।’

सातों ने एक साथ मुक्ति का मार्ग अपनाया और एक सुंदर जीवन बिताया। यही मल्ली आगे चलकर मल्लीनाथ बने, जो उन्नीसवें तीर्थंकर थे। जैन इतिहास में वे इस बात के लिए जाने जाते हैं कि उन्होंने मानव जाति को आत्मा की शुद्ध ज्योति और शरीर के नश्वर तत्त्वों में अंतर करना सिखाया।

हमें भी वह झलक मिलनी चाहिए। हम यहाँ उसी आध्यात्मिक दिशा में चलने के लिए आए हैं। यदि हम केवल शरीर से आसक्त रहेंगे, तो निश्चय ही हमें दुःख और भारीपन का एहसास होगा। हम अलगाव की पीड़ा महसूस करेंगे। लेकिन यदि हमें उस झलक की अनुभूति होगी, तो हमारा संकल्प विकास की ओर, समझ की ओर, अपने उच्च स्वरूप की ओर उन्मुख हो जाएगा। हम एक दूसरे को आत्मिक स्तर पर जानने लगेंगे। जब मित्रों का मिलन आंतरिक दिव्यता की अनुभूति कराता है, तो वह अन्य संबंधों से भिन्न होता है। वह अलगाव के दुःख से मुक्त हो जाता है, वह स्थायी मिलन बनने लगता है।

यदि आप कोई पुस्तक या पत्र पढ़ना चाहते हैं, तो उसे अपनी आँखों के एकदम सामने नहीं रखते। उसे कुछ दूरी पर रखना आवश्यक है। आप उस पर रोशनी पड़ने देते हैं। इसी प्रकार जब आप मोम और लौ की प्रकृति

से अवगत हो जाते हैं, तो उनसे थोड़ी दूरी बनाए रखते हैं। आप अपने आप से और अपने शरीर का निर्माण करनेवाले, निरंतर परिवर्तनशील तत्त्वों के बीच थोड़ी दूरी बनाए रखते हैं। आप अपने आप से और अपने मन में चक्कर काटनेवाले तत्त्वों के बीच दूरी बनाए रखते हैं।

जब आप इस अवस्था में पहुंच जाते हैं, तब आप अपने शरीर और मन के चिकित्सक बन जाएँगे। आप रोग निवारण की अपनी क्षमता से अवगत हो जाएँगे। जब आप चारों तत्त्वों - पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु - की प्रकृति को पहचान जाएँगे, आप अपने शरीर की ओर ध्यान देने लगेंगे, उसी तरह जैसे हम किसी कीमती मशीन की ओर देते हैं। तब आप देखेंगे कि कौन से तत्त्व की कमी है। आप उस तत्त्व की खोज करके अपने स्वास्थ्य को सुधार लेंगे।

जो व्यक्ति अपने शरीर से बंधा हुआ है, इस तरह का आत्मोपचार नहीं कर सकता। इसके लिए शरीर से दूरी बनाए रखना आवश्यक है। जब आप शरीर के सम्मोहन को तोड़ देंगे, तो आप उसे उसकी वास्तविकता में देख पाएँगे। आप उसे बिगाड़ना बंद कर देंगे और अपने आंतरिक स्वरूप से एकीकृत हो जाएँगे। इस तरह आप अपने भीतर स्थित अथाह ऊर्जा स्रोत से संपर्क साध सकते हैं और अपने स्वास्थ्य को ठीक कर सकते हैं।

जब स्वयं के अंदर उस अंकुरण को, उस ऊर्ध्व-गत्यात्मक तत्त्व को देख लेंगे, तो आप संसार के साथ रहने लगेंगे, लेकिन उसके बनेंगे नहीं। इसी तरह आप अपने शरीर के साथ रहेंगे, लेकिन उससे निर्लिप्त होकर। शरीर वही है; उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण जीवन में बदलाव लाता है। यह शरीर बंधन के लायक नहीं है, आपको उसका उपयोग अपनी जागरूकता को बढ़ाने के लिए एवं दूसरों के विकास में सहायक बनने के लिए करना चाहिए।

शरीर आनंद या भोग-विलास की वस्तु या तनाव से मुक्ति का साधन मात्र नहीं है, उसे ऐसा समझना तो उसका दुरुपयोग है। उसे संप्रेषण और संगम का वाहन समझना उसका सदुपयोग है - सम्मान के साथ, परवाह के साथ। तब वह वास्तव में प्रेम मंदिर बन जाता है - एक पवित्र स्थल जिसमें आदर का अलाव संसार के समस्त जीवधारियों को प्रकाशित करता है।

इसलिए दिन भर अंदरूनी सम्मोहन को तोड़ने के प्रति सजग रहें। यह कभी न भूलें कि कोई भी बंधन इतना मजबूत नहीं होता कि वह संसार की वस्तु को स्थायी बना सके। यदि आपका संबंध गलत समझ पर आधारित है, तो वह बालू पर खड़े किए गए महल के समान है। जब बालू खिसकेगी, वह ढह जाएगा। यदि आप आत्मा को आत्मा के साथ, मनुष्य को मनुष्य के साथ मिलाएँगे, तब आपकी नींव मजबूत बनेगी। दिन-रात इस बात पर ध्यान दें कि कैसे हमारी जागरूकता आत्मा से आकार की ओर, तथा आकार से आत्मा की ओर मुड़ती है। ध्यान दें कि जब आपका दृष्टिकोण बदलता है, तब आपकी भावनाओं में, आपकी चेतना में कैसा बदलाव आता है।

अब ध्यान में लीन होते हुए अपने हृदय में एक मंदिर का दर्शन करें। इस मंदिर के भीतर एक गर्भगृह है जिसमें एक सुंदर प्रतिमा है। देखिए कि किस तरह यह प्रतिमा जो आपकी आत्मा ही है, मोमबत्ती रूपी आपके शरीर से जुड़ी हुई है। लौ और मोमबत्ती परस्पर जुड़े हुए हैं। वे मिलकर आपको उठाते हैं। वे मिलकर आपके विकास और उत्कर्ष को प्रकाशित करते हैं।

### चिंतन के बिंदु

मेरे भीतर ऊपर की ओर क्या बढ़ रहा है? वह सौंदर्य को, कुलीन को, दिव्यता को पाने के लिए मेरी आत्मा की खोज है, मेरी शुद्धता है।

मेरे अंदर नीचे की ओर क्या गल रहा है? यह वह गंदगी है जो सड़कर अपने घटकों में बिखर जाती है।

ध्यान की प्रक्रिया से मुझे अपने चित्त को सम्मोहन-मुक्त करना है। क्या मुझे ज्ञात है कि मेरे कर्म आत्मबोध से प्रेरित हैं अथवा किसी दूसरे के इशारे से?

जो व्यक्ति जागरूक है, उसे कुछ भी बाँध नहीं सकता। वह संसार में रहता है, संसार के साथ है, लेकिन संसार का नहीं है।

मुझे एक प्रेम मंदिर बनकर रहने दो, एक पवित्र स्थल जहाँ से मैं संसार के सभी जीवधारियों को प्रकाश दूँगा।



## कंपनों के अंतःप्रवाह पर चिंतन

जो साधक मुक्ति के पथ पर चल रहा है, उसे अपना संतुलन नहीं खोना चाहिए। तनी हुई रस्सी पर चल रहे नर्तक के समान यदि एक भी कदम लड़खड़ा जाए, तो वह एक ही झटके में ज़मीन पर गिर पड़ेगा और चोट लग जाएगी। इसीलिए वह जागरूक रहने का अभ्यास करता है। वह अपने प्रत्येक कदम का बारीकी से निरीक्षण करता है। मन में आने वाले और मन से जाने वाले प्रत्येक विचार के प्रति वह सचेत है, अपने प्रत्येक रिश्ते के अर्थ को समझता है।

साधक के संतुलन को डगमगाने वाला खतरा आश्रव के रूप में आता है। आश्रव यानी जो सभी दिशाओं से आता है। कंपनों का एक प्रवाह है जो आपकी चेतना में चारों ओर से घुस रहा है। वह निरंतर आपके मन में हलचल मचाए रहता है, उसे आकर्षित और विकर्षित करता रहता है, उठाता और गिराता रहता है। यह प्रवाह आता कहाँ से है? आपके अंदर से और बाहर से, समाज से, मनोभावों से, आपके नियमन से, आपकी मानसिक संरचना से और आपके राग-द्वेष की पृष्ठभूमि से। इस भावना में हम आश्रव पर चिंतन करेंगे ताकि समझ सकें कि आप किस तरह के प्रवाहों के प्रति संवेदनशील हैं और किस तरह इनके द्वारा निगले जाने से अपने आपको बचा सकते हैं।

आपकी चेतना में कई प्रकार के अप्रिय विचार और भाव पहले से ही घुसपैठ कर चुके हैं और आपको दिन-रात परेशान कर रहे हैं। वे आपको सहज आनंदावस्था में रहने नहीं देते। संतुलन ही आनंद है। हमारी नैसर्गिक अवस्था संतुलन में रहने की है, आनंद में रहने की है। यह खुशी से अलग है क्योंकि खुशी किसी टेक या बाहरी उत्प्रेरण पर निर्भर करती है, मगर आनंद को कुछ नहीं चाहिए।

आनंद तो स्वयं के साथ रहना है, अपनी आत्मा के साथ रहना है। जब आप संतुलन की अवस्था में हैं, तो आपकी चेतना के सच्चे स्वरूप को देखा जा सकता है, उसके शांत, स्वच्छ, शुद्ध रूप को - किसी पहाड़ी

झील की तरह। जब संतुलन नहीं है, तो आप उस तूफानी समुद्र के समान हैं जिसका बहाव कभी इस तरफ तो कभी उस तरफ है। आप या तो उत्तेजित हैं या एकदम हताश, बस निरंतर उतार-चढ़ाव की स्थिति में रहते हैं। इस अस्थिरता से आपकी चेतना में काफी मैल जमा हो जाता है, निर्मल झरने में घुसने वाले प्रदूषक तत्वों के समान। यह मैल या कर्म बहकर अंदर आता है और आपकी शुद्ध चेतना को मलिन करता है। वह इसलिए अंदर घुस आया है क्योंकि आप जागरूक नहीं थे। आपने चेतना के सभी द्वारों को खुला छोड़ दिया और आपकी निर्मल चेतना दूषित हो गई।

इस भावना का मूलभूत विचार है - द्रष्टा उस अंतःप्रवाह से भिन्न है जिसे वह देख रहा है। आप पीछे हटकर उस प्रक्रिया को देखते हैं। आप विवेक का उपयोग करते हैं, जो विभेदक बुद्धि है। यदि मोटरगाड़ी ठीक तरह से काम न करे, तो चालक मोटरगाड़ी से स्वयं की तुलना नहीं करता। यदि आपका मकान पुराना है, तो आप उससे अपनी पहचान नहीं बनाते, अपने आपको पुराना और टूटा-फूटा नहीं मानते। यदि आपके कपड़े गंदे हैं, तो आप अपने आपको गंदा नहीं समझते। इसी तरह, जब आपको मंदता, भारीपन या नकारात्मकता का एहसास हो, तो आप उनके साथ अपनी पहचान नहीं बनाते हैं। ये दूषक तत्त्व आप नहीं हैं। वे बाहर से आए हैं, और जो वस्तु बाहर से अंदर आई है, उसे फिर से बाहर निकाला जा सकता है। इस तरह का मैल आपकी शुद्ध चेतना का हिस्सा नहीं है। आपको इसी विचार पर चिंतन करना है।

ध्यान में हमेशा स्वयं को मासूम, स्वच्छ और सुंदर रूप में देखिए। बिना किसी शर्त के अपने आप से प्रेम करें। बिना अपराध बोध के अपने आप को देखें। जब आप अपने आप से प्रेम करने लगेंगे, तो आत्मानुभव कर सकेंगे। और अगर आप चेतना को बाहरी अंतःप्रवाह से एकीकृत करके देखेंगे, तो शायद स्वयं को ही दोषी ठहराएँगे। शायद आप स्वयं को हतोत्साहित कर देंगे। हो सकता है कि आप अपनी आत्मा पर जमी धूल पर ध्यान केंद्रित करने लगेंगे, न कि उसके दर्पण जैसे गुण पर। और यदि आप स्वयं को पापी मान लेंगे, तो आप उस मिथ्या अवस्था में जीने लगेंगे। जहाँ भी आप जाएँगे, यह अपराध बोध आपके साथ चलेगा। यदि आप अपने बंधन से अपनी पहचान बनाएँगे, तो आप उससे कैसे छूट सकेंगे?



इसलिए याद रखिए, पाप और अपराध बोध आपके लिए नहीं है। अपने मन की आँखों के सामने अपनी सुंदर छवि रखिए। सोचिए कि आप रोग से रहित हैं, एक गतिशील ऊर्जा के समान - आध्यात्मिक आरोग्य से पूर्ण। इस तरह मानसिक अस्थिरता और असमंजस, जो अधिकांश रोगों के कारण है, दूर हो जाएँगे।

जैसे-जैसे आप ध्यान करने लगेंगे, स्वयं की सहज पवित्रता में आपका विश्वास किसी और के प्रोत्साहनात्मक शब्दों से नहीं, बल्कि अंदर की झलक से आएगा। जब आप किसी शांत झील के किनारे बिना किसी परेशानी के अकेले बैठे हुए हैं, तब आपको कैसा लगता है? आप स्निग्ध संध्या के रंगों को अपने सामने धीरे-धीरे प्रस्फुटित होते हुए देखते हैं। आपको कितनी शांति और आनंद की अनुभूति होती है! अब आपकी वास्तविक प्रकृति प्रकट हो जाती है। क्यों? क्योंकि कोई भी बात आपको परेशान नहीं कर रही है।

वह अनमोल अनुभूति शायद पाँच मिनट, दस मिनट, आधे घंटे तक रहे, लेकिन इतने में ही वह आपको अपने वास्तविक स्वरूप की एक झलक दिखा देती है। जो पल भर रह सकती है, वह लंबे समय तक भी बनी रह सकती है। सवाल उसे विस्तार देने का है। एक क्षणिक झलक से आप अपने अंतर में निहित शांति में विश्वास करने लगते हैं। आप उससे यह पूछने का साहस जुटा लेते हैं, 'यदि यह झलक कुछ क्षणों के लिए रह सकती है, तो अधिक समय के लिए क्यों नहीं?' इस तरह का विश्वास लंबे अंतराल तक बना रहेगा। यह किसी के आश्वासन या वादे से नहीं आया है, यह आपकी अपनी अनुभूति का नतीजा है। अपने अनुभवों के आधार पर आप आत्मज्ञान की गहराई में उतरते जाते हैं।

अतः बाहर जाने के बजाय साधक भीतर की ओर बढ़ता है। जिसे हम मौन, निर्लिप्तता या विरक्ति कहते हैं, वह तो मात्र अपनी चेतना की शुद्धि का प्रयत्न है। वह अपने अंदर के ऊर्जा स्रोत को परिशुद्ध करना है। इसके तीन चरण हैं। पहला है सुखाना। चेतना का जो जल मलिन एवं दूषित हो गया है, उसे कुछ समय के लिए सूखने दिया जाता है। केवल इसके निरीक्षण की प्रक्रिया से ही वह शक्तिशाली ऊष्मा आती है जो सभी

नकारात्मक कंपनों को दूर भगा देती है। इसके लिए साधक को उन सभी द्वारों, छेदों और रास्तों को बंद करने का निर्णय लेना होगा जिनसे प्रदूषक तत्त्व अंदर आ सकते हैं। दूसरे चरण में वह अपनी चेतना के तल में झाँकेंगा ताकि उस मिट्टी या चिपचिपे अवशिष्ट को खोदकर बाहर निकालना होगा। अंत में जब क्षेत्र बिलकुल स्वच्छ हो जाता है, वह द्वारों को खोलता है ताकि ताजा जल फिर से बहकर आ सके।

इस प्रक्रिया पर अग्रसर होने के लिए, कभी-कभी लोग कुछ समय के लिए दूसरों से संबंध तोड़ लेते हैं। उनके लिए जरूरी है कि स्वयं को कुछ अवकाश दे सकें। यह स्वयं से या संसार से पलायन करना नहीं है। 'अनासक्ति' शब्द की यह विवेचना उपयुक्त नहीं है। अनासक्ति दूसरों से दूर जाना नहीं है, बल्कि स्वयं के निकट आना है। आसक्त होने का अर्थ है बँधना। अनासक्त यानी मुक्त होना। जो भी चीज़ आपको बाँधती है, आपको खींचती-धकेलती है, वह आपका बंधन है। इस बंधन के कारण आप अपने दायरे में नहीं हैं। आप इधर-उधर खींचे जा रहे हैं, अस्थिर महसूस कर रहे हैं।

समय निकालकर स्वयं का निरीक्षण करें। अपने आपकी जटिल स्थितियों से अलग कर दें। उन सभी बंधनों से स्वयं को मुक्त करें जो आपको प्रभावित करते हैं क्योंकि आप स्वच्छ, निर्मल दृष्टि से देखना चाहते हैं। ऐसा आप संसार से भागने के लिए नहीं, अपितु स्वयं को तैयार करने के लिए करते हैं ताकि जीवन के संग चलें, अपने निजी दायरे में भी, साथ ही साथ एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में भी। और यदि आप स्वयं के साथ ही नहीं हैं, तो आप किसी दूसरे के साथ कैसे रह सकते हैं? यदि स्वयं को जानने से पहले ही आप किसी से कहें, 'मैं तुम्हारे साथ रहूँगा,' तो आप झूठा वादा कर रहे हैं। इसके बजाय स्वयं से कहें, 'मैं स्थिर होना चाहता हूँ, चपल नहीं। मैं हलन-चलन की इस निरंतर प्रक्रिया को रोकना चाहता हूँ। मुझे स्वयं के साथ रहना चाहिए ताकि मैं दूसरों के साथ सहज रहना सीख लूँ।'

इस तरह आप जीवन को एक आंतरिक प्रयोगशाला के रूप में देखते हैं। आप स्वयं पर परीक्षण करते हुए स्वयं से तीक्ष्ण प्रश्न करते हैं, 'क्या मैं अपने आपसे निश्चित हूँ? मैं दूसरों के पास क्यों जाता हूँ, उन्हें सुखी

करने के लिए या स्वयं से बचने के लिए?’ यदि आप अपने आपसे बचने के लिए इधर-उधर भटक रहे हैं, तो आप अपनी चिंताओं को सर्वत्र ले जा रहे हैं। जहाँ भी आप जाते हैं, उन रिश्तों में बेचैनी पैदा कर रहे हैं। स्वयं से अलग एक सुखी, सुरक्षित जगह खोजने की कितनी भी कोशिश कर लें, आप अपनी बेचैनी से बच नहीं पाएँगे। सबसे कठिन बात यही है – स्वयं के संग निश्चित रहना ताकि सभी के साथ निश्चित रह सकें।

एक बार एक व्यक्ति ने मौन धारण किया और साधना करने लगा। उसके मित्रों ने देखा और उसका मजाक उड़ाने लगे, ‘यह क्या कर रहा है?’ उन्होंने हँसते हुए कहा। ‘यह दिन भर बैठा रहता है, करता कुछ नहीं। ऐसा तो हम भी आराम से कर सकते हैं।’

जब साधक ने यह बात सुनी, तो उसने पूछा, ‘क्या तुम समझते हो कि ऐसे रहना आसान है? अपने आप में बस ऐसे ही रहना?’

‘हाँ हाँ,’ एक मित्र ने कहा, ‘तुम्हें इसके लिए कुछ नहीं करना पड़ता है। मेरे ऊपर कई जिम्मेदारियाँ हैं – काम पर जाना है, किराया चुकाना है, मकान की देखभाल करनी है। यदि तुम मेरी जगह ले लो, तो मैं मजे से तुम्हारी तरह बैठा रहूँगा।’

‘अच्छी बात है,’ साधक ने कहा, ‘मैं तुम्हारे खाने-पीने की व्यवस्था करूँगा, तुम्हारा किराया चुका दूँगा और वह सब कुछ कर दूँगा जो तुम्हें आमतौर पर करना पड़ता है। मैं एक महीने तक ऐसा करूँगा। तुम्हें बस अपने साथ रहना है।’

मित्र ने कहा, ‘यह तो बहुत आसान है। लेकिन इसके बदले मुझे क्या करना होगा?’

‘कुछ भी नहीं,’ साधक ने कहा। ‘करने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं तुम्हें एक शब्द देता हूँ – सोहम्। तुम्हें इस शानदार बंगले में रहना है और बस इस एक शब्द को जपना है।’

‘बस? केवल इस एक शब्द का उच्चारण करता रहूँ?’

‘हाँ, बस इतना ही।’

बात पक्की हो गई, मित्र बहुत खुश हुआ। पहले दो-तीन घंटे तक वह बैठे-बैठे सोचता रहा, 'सब चीजों का बंदोबस्त हो गया है। मुझे किराया चुकाने की चिंता नहीं करनी पड़ेगी।'

और वह उस मंत्र का उच्चारण करने लगा। चार घंटे और बीत गए। वह वहाँ बैठे-बैठे थक गया और ऊबने लगा। वह सोचने लगा, 'मैं कर क्या रहा हूँ? वही शब्द, बार-बार वही शब्द! खैर, जो कड़ी मेहनत मुझे पहले करनी पड़ती थी, उसकी तुलना में यह बुरा भी नहीं है!' और वह मंत्र का उच्चारण करता रहा।

एक दिन बीत गया। 'सोहम् सोहम्,' वह मंत्र को दोहराता रहा। 'कितना नीरस शब्द है! कोई सुर नहीं, कोई ताल नहीं, कोई उत्तेजना नहीं! यह क्या है?'

वह खिड़की के पास बैठा था जहाँ उससे बात करने के लिए कोई नहीं था, उसके चुटकुले सुनने के लिए कोई नहीं था। भोजन भी अकेले ही करता था। तीसरे ही दिन उसे बहुत भारीपन महसूस होने लगा। चौथे दिन सुबह जब वह उठा तो उसने अपने आपसे कहा, 'मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता, मैं पागल हो जाऊँगा।'

उसकी अवचेतना से विचार उभरकर आने लगे, एक के बाद एक। वह सोचने लगा कि उसने किस तरह का जीवन जीया है, किस तरह लोगों के जीवन के साथ खिलवाड़ किया है, कितने झूठ बोले हैं। हर चीज़ बढ़-चढ़कर उसके मस्तिष्क में आने लगी। निःशब्दता में यही होता है - चीजें अपने आकार-प्रकार से बड़ी दिखने लगती हैं।

जब आपको ज्यादा गरमी लग रही हो, तो आप अपने कपड़े उतार सकते हैं। मगर जब विचारों के सैलाब के कारण आपका दम घुटने लगे, तो आप क्या करेंगे? कपड़े बदलना आसान है, पर विचारों को बदलना कितना कठिन है! विचार इतने गहरे पैठ जाते हैं कि कभी-कभी वे कांटों के समान लगते हैं, और हमें पीड़ा पहुँचाते हैं।

यह व्यक्ति स्वयं का सामना करने के लिए तैयार नहीं था। जिस चीज़ का सामना करने के लिए लोग तैयार नहीं हैं, उन्हें ढके रखने के लिए उनके

पास कोई न कोई तरकीब होती ही है - उन्हें छोटा करने या उन्हें छिपाने के लिए। मगर आज इस व्यक्ति के लिए, चीजें बड़ी होती जा रही थीं।

‘नहीं,’ उसने सोचा, ‘मेरा मन फट जाएगा।’

पाँचवें दिन वह अपने मित्र के पास गया और उससे कहा, ‘मैं बाहर आना चाहता हूँ। मुझे यह सब नहीं करना है।’

‘मगर हमारी शर्त का क्या होगा?’ साधक ने पूछा।

‘भाड़ में जाए शर्त!’

‘तुम इतने व्यग्र क्यों हो रहे हो?’

‘क्योंकि मैं नरक जैसी यातना से गुजर रहा हूँ,’ उसने कहा। ‘मेरे विचार विकराल रूप धारण करते जा रहे हैं।’

‘क्या तुम्हें नहीं लगता कि किसी न किसी दिन तुम्हें अपने विचारों का सामना करना ही पड़ेगा?’ साधक ने अपने मित्र को स्नेह से झिड़कते हुए समझाया, ‘क्यों न अभी से ही उनका सामना किया जाए? कब तक तुम उनसे भागते रहोगे? कभी न कभी तो उनका सामना करना ही होगा, तब क्यों न आज ही उनका मुकाबला किया जाए? उनको क्यों टाल रहे हो?’

‘क्या मुझे उनका सामना करना ही होगा?’ मित्र ने पूछा।

‘यह समय सभी के लिए आता है; आज नहीं तो बाद में कभी। एक न एक दिन, तुम्हें अकेले रहना पड़ेगा, तुम्हारे चारों ओर कोई और नहीं होगा। क्यों न स्वयं का सामना आज ही कर लो? तुम जानते हो कि बहुत मिर्च-मसालेवाला भोजन खाने पर कैसा लगता है। शरीर में जलन होने लगती है। तुम्हारे अंदर विचार भी इसी तरह घुमड़कर फैल रहे हैं और तुम्हें परेशान कर रहे हैं। तुम न तो उन्हें नियंत्रित कर सकते हो, न ही उनसे छुटकारा पा सकते हो। तब उनका कोई उपाय तो करना ही होगा, क्यों न उन्हें बदल दिया जाए?’

‘क्या करूँ?’ नवसाधक ने पूछा। ‘मैं अपने विचारों को उनके वर्तमान रूप से कैसे बदल सकता हूँ?’

‘तुम अंदर से शुद्ध हो। तुम्हें स्वयं को अपने विचारों से अलग करना होगा और उन्हें एक-एक करके देखना होगा। पूर्व में तुमने सभी इंद्रियों को, सभी भीतरी दरवाजों को खुला छोड़ दिया था। तुम नहीं जानते थे कि जब तुम उनके द्वारा बाहर जाते थे, तब मैला जल भी उन्हीं के द्वारा अंदर घुस आता था। इसलिए इस मैले जल को तुम्हें सुखाना होगा। जब तुम इतनी धुँधली सोच से घिरे हुए हो और छिछले प्रेम-पाशों में उलझे हुए हो, तो अपना स्वच्छ प्रतिबिंब कैसे दिखाई देगा?’

‘तब मुझे कैसे जीना चाहिए?’

साधक ने कहा, ‘जीना, हाँ, तुम्हें जीना ही तो है! पर इस समय तुम वास्तव में जी नहीं रहे हो। तुम बचकर भाग रहे हो। अब समय आ गया है कि तुम सजग और विवेकशील बनो। अपनी चेतना को साफ करो और तुम्हें अपने जीवन का एहसास होगा।’

जब आप कंपनों के अंतःप्रवाह पर ध्यान करते हैं, तो आप परखने लगते हैं कि कौन से द्वार खुले रह गए हैं और किस तरह की मलिनता अंदर आ रही है। अब आप देखते हैं कि किस तरह आप नकारात्मक आदतों के शिकार हो रहे हैं। आश्रव का उपचार है संवर। संवर का अर्थ है रुकना - दरवाजों पर ताले लगाकर अंतःप्रवाह को भीतर आने से रोकना। संवर की कुंजी है आश्रव। आप अंतःप्रवाह को तब तक नहीं रोक सकते जब तक यह जान नहीं लें कि वह क्या है।

आश्रव भावना हमें सिखाती है कि किस तरह अपनी कमजोरियों, अपने खुले द्वारों, अपने भीतरी पाशों और अपनी अनियंत्रित लतों पर नजर रखें। इनमें सर्वप्रथम है कषाय यानी भीतरी आसक्तियाँ, जैसे क्रोध, मान, माया और लोभ। ये गुंडे हैं, सभी एक-दूसरे से मिले हुए हैं और चालाकी से काम करते हैं। ये हमेशा एक साथ प्रकट नहीं होते। इनमें से एक पहले खिड़की से अंदर घुसेगा, फिर द्वार खोलकर दूसरों को भीतर बुला लेगा। इन सभी में गहरा संबंध होता है।

शायद आप सोचें, ‘मुझमें अब ज़रा सा अहम् ही बचा हुआ है।’ लेकिन यदि कोई आपके अहम् को चोट पहुँचाए, तो क्रोध उत्पन्न होता है।

शायद आप बिगड़ उठें और कठोर शब्द कहने लगे। जिस व्यक्ति में अहम् हो, उसमें थोड़ा कपट होता ही है। अपने अहम् को चोट से बचाने के लिए वह कपट का सहारा लेता है। उस अहम् में दूसरों को अपने अधीन करने की और शक्तिशाली बनने की लालसा भी छिपी हुई है। और तो और, जब भी वह लालची व्यक्ति कुछ एकत्रित करता है, चाहे धन हो या ऊँचा पद, तब अगर कोई उसके मार्ग में रुकावट डाले, तो उसे क्रोध आने लगता है। इस तरह ये चार, जिन्हें कषाय कहते हैं, वर्षा की ताज़ी बौछार के बजाय नाली के मैले पानी के लिए द्वार खोल देते हैं। सबसे पहले इस खुले द्वार को बंद करना होगा।

इसके बाद है एक और खुला द्वार या पाश, जिसे योग कहते हैं। यहाँ इसका एक विशिष्ट अर्थ है। यह वह योग है जो मन, वाणी और शरीर को प्रिय, ललचानेवाली, आकर्षक वस्तुओं के साथ युक्त करता है, यानी जोड़ता है। जब आप सजग नहीं रहते, तब इस तरह की वस्तुएँ आपको खींचती रहती हैं। उदाहरण के लिए, आप बाज़ार में किसी दुकान की खिड़की में एक कोट देखते हैं। आपकी नज़र उससे जुड़ जाती है और आपका मन उसे हासिल करने के उपाय सोचने लगता है। तब अगर आपके घरवाले आपको वह कोट खरीदने के लिए रुपये न दें, तो आप नाराज़ हो उठेंगे, 'तुम मेरे लिए क्या करते हो? तुम तो उस सुंदर कोट को खरीदने में मेरी मदद भी नहीं कर रहे हो।'

आपकी सारी उर्जा उस कोट को खरीदने के लिए रुपये एकत्रित करने में लग जाती है। इससे सूचित होता है कि जब योग के द्वार खुले छोड़ दिए जाते हैं, तब इंद्रियाँ बिना किसी अभिज्ञता के किस तरह आकर्षक वस्तुओं के साथ जुड़ने लगती हैं।

तीसरा पाश है प्रमाद। यह हमारे चेतना के जल को मलिन करने के लिए तीन रूपों में आता है। सर्वप्रथम, वहाँ अनिश्चितता है। व्यक्ति असमंजस में रहता हुआ सभी दिशाओं में भटकता रहता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं से अनभिज्ञ है, इसीलिए वह विपरीत दिशाओं में खींचा चला जाता है। उसका जीवन किसी उद्देश्यपूर्ण दिशा में नहीं चल रहा है। वह कुटिल जाल में फँसा हुआ है।

इसी से संबंधित है प्रमाद का दूसरा रूप - समय के प्रति असावधानी या अनुशासन का अभाव। जो आलसी हैं, वे कहते हैं, 'मेरे पास समय नहीं है,' क्योंकि वे नहीं जानते कि समय का सदुपयोग कैसे करें। ऐसा व्यक्ति समय बरबाद करने में माहिर है। वह घंटों चाय की चुस्कियाँ लेता रहता है, टीवी देखता रहता है या अखबार पढ़ने में मशगूल रहता है। फिर वह हड़बड़ी करने लगता है क्योंकि उसे अपने कार्य में विलंब हो रहा है। इससे पता चलता है कि समय की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। यह एक जाल है जिसमें फँसने पर हमारी सारी ऊर्जा नष्ट हो जाती है। लेकिन जो समय को जोतना जानता है, उसके पास समय हमेशा रहता है।

प्रमाद का तीसरा रूप है जीवन की वास्तविकता से अनजान रहना, अपने आत्म-स्वरूप की ओर ध्यान नहीं देना। ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने अपने आपको नहीं सिखाया है कि इस मानव जीवन रूपी सुंदर उपहार का सही उपयोग कैसे किया जाए। इसके लिए कुछ अनुशासन और कुछ प्रतिबद्धताएँ आवश्यक हैं। इसीलिए जो अप्रमाद का अभ्यास करते हैं, यानी जागरूक रहते हैं, वे अपने कार्यक्रम की रूपरेखा बना लेते हैं। वे इसमें सख्ती नहीं बरतते हैं। मगर वे जानते हैं कि उन्हें एक दिन में, एक महीने में अथवा एक साल में क्या-क्या हासिल करना है, ताकि वे अपनी ऊर्जा को उस दिशा में लगा सकें। यह मात्र उपलब्धि के लिए हासिल करना नहीं है, न ही यह बाहरी लाभों के लिए, यह है अपने आप को किन्हीं सोद्देश्यपूर्ण कार्यों में लगाना ताकि जीवन का विकास हो, जीवधारियों का भला हो। इस जागरूकता को मन में रखने से, अपने आपको जीवन के तारतम्य में लाकर तात्कालिक कार्यों पर ध्यान लगाया जा सकता है, और साथ ही अतीत, वर्तमान और भविष्य को एक-दूसरे के तारतम्य में लाया जा सकता है।

यदि आपमें अनुशासन के साथ दृढ़ता भी है, तो सब कुछ सुचारु रूप से होगा। समय के वितरण में आप सही संतुलन प्राप्त कर लेंगे, कुछ समय शांति के लिए, कुछ ध्यान के लिए, विश्राम के लिए, पोषण ग्रहण करने के लिए, शारीरिक व्यायाम के लिए और कुछ सेवा के लिए।



चौथा द्वार एक आंतरिक पाश है, जिसे अविरति कहते हैं - जीवन में जो चीजें आवश्यक हैं, उन्हें सीमित करने में विफल रहना। इस गलती को दूर करने के लिए साधक विरति का पालन करता है, वह प्रतिज्ञा लेता है कि वह अपनी संपदा को सीमित करेगा, अपनी आवश्यकताओं को सीमित करेगा। उदाहरण के लिए, वह भोजन को कम करने की प्रतिज्ञा ले सकता है। वह कह सकता है, 'आज मैं केवल तीन प्रकार का खाना ही खाऊँगा,' या 'आज मैं केवल दो बार खाऊँगा,' या 'आज मैं बिना नमक के स्वादरहित भोजन ही खाऊँगा'।

इससे पाचन तंत्र पर अत्यधिक बोझ नहीं पड़ता। हमारे शरीर को भोजन पचाने के लिए कम से कम तीन घंटे का समय चाहिए। यदि हम उसे इतना समय न देकर उसमें खाना भरते ही जाएँगे, तो पाचन तंत्र काम करना बंद कर देगा और उसमें भोजन बिना पचाएँ यूँ ही पड़ा रहेगा। उसे सब कुछ दुबारा करना पड़ेगा। यदि हम कम भोजन खाएँ, तो पाचन तंत्र ठीक तरह से काम करेगा और हमें अपचन नहीं होगा। इसके साथ ही, शरीर को ठंडा रखने के लिए और कब्ज से बचने के लिए दिन में आठ से दस बार तरल पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इस तरह सुविचारित रूप से संतुलित भोजन करेंगे, तो स्वाद बिंदुओं को नियंत्रण में रख सकते हैं, इच्छाओं को कम कर सकते हैं और अपने स्वास्थ्य को बनाए रख सकते हैं।

किसी भी मार्ग का अंधाधुंध अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। आप साधु के जीवन का अनुकरण करने के लिए बाधित नहीं हैं। सब कुछ अपने परिवेश के अनुकूल करें। आपको स्वयं को ढालना और बदलना चाहिए, न कि किसी ऐसे मार्ग का अंधानुकरण करना जो किसी अन्य जलवायु के लिए, अन्य परिवेश के लिए या अन्य काल के लिए उपयुक्त रहा हो। महत्वपूर्ण बात यह है कि आप अपनी आवश्यकताओं को कम करने की ओर सचेत रहें। उदाहरण के लिए, आप अपनी संपत्ति को सीमित करने का निर्णय ले सकते हैं। स्वयं के साथ एक अनुबंध कर लें, 'मैं केवल इतने से संतुष्ट रहूँगा'। अन्यथा मन न सिर्फ अपनी ज़रूरतों को, मगर अपनी हर इच्छा को भी उचित समझेगा। जीवन के अंत तक कमाने की ज़रूरत नहीं है। जब आप सीमा बांधते हुए कहते हैं, 'बस इतना पर्याप्त है,' तब आप अपने समय को आध्यात्मिक कार्यों में या सेवा में बिता सकते हैं।

पाँचवा पाश मिथ्यात्व का है - अज्ञान, असमंजस। मिथ्यात्व में सत्य झूठ में घुल-मिल जाता है, हिंसा को अहिंसा समझ लिया जाता है, कामुकता को प्रेम समझ लिया जाता है, सही को गलत से अलग नहीं पहचाना जाता। यह विचारों में भ्रान्ति का सूचक है। वह करुणा और वेदना पहुँचाने में फर्क नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, जिसका मन मिथ्यात्व से धूमिल हो, वह सार्वभौमिक प्रेम की बात करने के साथ-साथ पशु-बलि का समर्थन भी कर सकता है।

मिथ्यात्व इस बात का सूचक है कि आप सत्य देखने में विफल हैं। अर्ध-सत्य को पूर्ण सत्य मान लिया जाता है और कभी-कभी वह पूर्ण सत्य से भी अधिक प्रभावशाली हो जाता है। वह आपको बांध देगा, आप पर हावी हो जाएगा। इसके विपरीत सत्य पूर्ण प्रकाश है, वह आपको मुक्त करता है। मिथ्यात्व सबसे भयंकर पाश है क्योंकि वह आपको अंदर से जकड़ देता है।

ये ही वे पाँच द्वार हैं जिनसे श्रव बाहर से बहकर अंदर आ जाता है। जब इन द्वारों को खुला छोड़ा जाता है, तो हमारी निर्मल चेतना अनगिनत प्रदूषक तत्वों, भीतरी कमजोरियों और कपट से मंद पड़ जाती है।

भूत और वर्तमान काल की हर घटना ने आपकी चेतना पर छाप छोड़ी है - संस्कृति, परिवार, भौगोलिक परिस्थितियाँ, शिक्षा, धर्म। इनमें से कुछ छापों को हम संसारी श्रव कह सकते हैं। दूसरों को धार्मिक श्रव कहेंगे। यद्यपि हम संसारी श्रवों से बचने की कोशिश कर सकते हैं, लेकिन धार्मिक श्रवों से बचना और भी अधिक कठिन है। यह इसलिए क्योंकि इनकी छाप बहुत ही गहरी पड़ती है- अपराध-बोध, आत्म-निंदा, दोषारोपण और अंधविश्वास।

हमें दोनों प्रवाहों को देखना है, बाहर से अंदर आने वाला और अंदर से बाहर जाने वाला। अक्सर अपनी आंतरिक कट्टरता के कारण आप स्वयं को उस रूप में स्वीकार नहीं कर पाते हैं जैसे आप वास्तव में हैं। जब कोई आपकी आलोचना करता है, आपको ऐसे लगता है मानो कोई तीक्ष्ण बाण आपके हृदय को भेद गया हो। आप मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हैं। आप भय का अनुभव करते हैं, और भय आपको जीवन जीने नहीं देता।

आत्म-निंदा की भीतरी आदत की वजह से आप अपनी चेतना के ऊपर लादे गए बोझ को उतार नहीं पाते, उस कीचड़ को जो आपकी चेतना को मलिन करता है। स्वयं की अत्यधिक निंदा न करें, वरना आपमें कुछ भी करने या आगे बढ़ने के लिए ताकत नहीं बचेगी। आध्यात्मिक होने के लिए आपको हल्का-फुल्का होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति दुःख का भारी-भरकम बोझ उठाए हुए हल्का-फुल्का नहीं हो सकता। वह कीचड़ की बहुत भारी गठरी है। दुःखी रहकर आप स्वयं को देख नहीं पाते। सभी पाप दुःख से ही पैदा होते हैं। जब कोई दुःखी होता है, तब वह इतनी पूर्णता से उस भारीपन के साथ अपना तारतम्य बिठा लेता है कि वह इस बोझ से बचने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहता है। वह शराब, नशीले पदार्थ और अन्य व्यसनों को अपना लेता है। वह आत्महत्या तक कर सकता है।

सही बोध हल्का होने पर प्राप्त होता है। ऐसी हर चीज से बचें जो आपको उदास, अवसादग्रस्त और अप्रसन्न करती है। उसे आने ही न दें, क्योंकि अगर एक बार वह प्रकट हो जाए, तो आपकी पूरी दृष्टि को धूमिल कर देती है। स्वच्छ दृष्टि के अभाव में कैसे देख पाएँ कि आप वास्तव में निर्मल और शुद्ध हैं?

आपकी चेतना को चाहिए खुला, साफ प्रदेश। उसकी प्रकृति ही ऐसी है - असीम, अनंत, देदीप्यमान। आश्रव पर चिंतन करके देखिए कि कैसे वस्तुओं ने आपके भीतरी प्रदेश को भर दिया है। यह आपके बाहरी प्रदेश में भी गोचर होता है। मैंने ऐसे घर देखे हैं जिनमें मेज़-कुर्सियों का भीड़-भड़ाका है। उनमें रहनेवालों के चलने-फिरने के लिए जगह नहीं बची है। वहाँ आप बार-बार मेज़-कुर्सियों से टकरा जाते हैं। अब देखिए कि क्या अपनी चेतना में भी आप वस्तुओं से, संपत्तियों से, चिंताओं से टकराते रहते हैं?

आगे बढ़कर अपने आपसे पूछिए, 'मैं वस्तुएँ क्यों खरीदता हूँ? क्या इसलिए कि मैंने योग के द्वार खुले छोड़ दिए हैं? क्या मैं अपनी आँखों को वस्तुओं की ओर आकृष्ट होने देता हूँ और फिर क्या मैं दौड़कर उनको खरीद लेता हूँ? क्या यह मेरे अहम् के कारण है? क्या मैं वस्तुओं को अपने उपयोग के लिए खरीदता हूँ अथवा दूसरों के सामने दिखावा करने के

लिए? मैं दूसरों को प्रभावित क्यों करना चाहता हूँ? मैं अपने घर को मेज-कुर्सियों की दुकान में क्यों बदल रहा हूँ?' अपनी सनक देख रहे हैं - जब आपके पास कोई वस्तु होती है, तो आप उसका दिखावा करना चाहते हैं, और जब आपके पास वह नहीं होती, तो आपको लगता है कि यह आप पर ज्यादाती है कि आपको वह वस्तु नहीं मिली है। दोनों ही मानसिक ग्रंथियां हैं; और दोनों ही आत्म-अज्ञान से जन्मी हैं।

जीवन स्वयं में मानसिक ग्रंथियों से मुक्त है, खींचने-धकेलने से मुक्त है। मगर इस संसार में जीना मुश्किल है, वन में रहना आसान है। यहाँ कितने ही व्यावसायिक विज्ञापन आप पर बरस रहे हैं। अतः आपमें से जो साधक शहरों में रह रहे हैं, उन्हें वन में चले गए लोगों से अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। क्योंकि उनके लिए कोई बाहरी प्रलोभन नहीं हैं। लेकिन आपके लिए तो प्रलोभन ही प्रलोभन हैं और आप धीरे-धीरे उनमें संतुलन लाना सीख रहे हैं।

शायद लोग आपका मजाक उड़ाते हैं क्योंकि आप शाकाहारी हैं। वे आपको सिरफिरा कहते हैं और आप पर आलोचना के व्यंग्य बाण छोड़ते रहते हैं। वे आप पर एक कुदरती जीवन जीने के लिए, व्यभिचार न करने के लिए, शराब न पीने के लिए, या किसी मनोवैज्ञानिक के पास न जाने के लिए फब्तियाँ कसते हैं। उनके लिए असामान्य जीवन सामान्य हो जाता है। उदाहरण के तौर पर, वे इस बात को समझ नहीं पाते कि यौन परिचर्चाओं में जाकर वे आसक्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं, भीतरी असंतोष, पीड़ा एवं मानसिक ग्रंथियां को बढ़ा रहे हैं और रिश्तों में बिखराव का मार्ग खुला छोड़ रहे हैं। लेकिन आप निष्ठावान साधक हैं। इन सब आलोचनाओं के बावजूद आप जो हैं, वही बने रहते हैं। आपमें भीतरी विश्वास की शक्ति है।

आपने जीवन की गहराइयों का अनुभव करने के लिए समय निकाला है। आपने साधना की है, कुछ ऐसा पाने के लिए जो स्थायी हो, टिकाऊ हो, जो आपमें भीतरी विश्वास जगाए। आप क्षणभंगुर चीजों से प्रभावित नहीं होते। जब हवा का तेज झोंका आता है, तो आप जानते हैं कि किस तरह अडिग रहकर इंतजार करें। यह वह कला है जो सिखाती है कि जब तूफान आए, तो अडिग कैसे रहें ताकि उसमें डूब न जाएँ।

जब आपने एक बार खुले द्वारों को बंद कर दिया, प्रदूषित जल को सुखा दिया और कूड़े-करकट की सफाई कर दी, तब इन द्वारों को दुबारा खोलकर ताजे, स्वच्छ वर्षाजल को आने दें। यह वर्षाजल क्या है? यह मैत्री का बहाव है - मैत्री अर्थात् शुद्ध प्रेम, करुणा और संप्रेषण। इससे आपको अनुभव होता है कि आप मुक्त हैं, सभी के साथ एक ही लय में हैं। आप लोगों से उन्हें प्रभावित करने के लिए नहीं मिलते हैं। आप उनसे मिलते हैं उनके साथ कुछ बांटने के लिए। देखिए कि अब आप कितनी सहजता से लोगों के साथ मिलते हैं, क्योंकि ऊँच-नीच का भाव नहीं, कोई कड़वापन नहीं, दोषारोपण नहीं, निंदा नहीं।

अब अगर कोई आपकी निंदा करे, तो आप उसे स्वीकार कर लेते हैं कि शायद मुझमें कोई ऐब रह गया है, जिसका अभी उन्मूलन नहीं हो पाया है। इसलिए आप उस व्यक्ति का आभार मानते हैं कि उसने आपको इस ऐब के बारे में बताया और ऐसा करके आपको और हल्का होने का अवसर प्रदान किया। यदि जीवन के प्रति अपने अभिगम में आप सच्चे हैं, तो जो व्यक्ति आपमें गलतियाँ ढूँढ़ा करता था या आपसे नफरत करता था, उसके दिल में भी आप जगह बना लेंगे।

प्रबुद्ध व्यक्ति स्वयं को अपने भीतरी संसारों में कैद नहीं करते हैं। अपने आंतरिक सत्त्व को समझते हुए, वे किसी भी वस्तु से प्रभावित हुए बिना इस संसार में संप्रेषण और विचरण करते हैं। वे कषायों से लिप्त हुए बिना कार्य करना सीख लेते हैं, ताकि उनकी शुद्ध चेतना पर धूल और मैल न जमे और उनकी दृष्टि धूमिल न हो। यदि आप सच्चे मन से इस पर गंभीरता से काम करेंगे, तो आप अपनी जीवन शैली को बदल सकते हैं। दुनिया को दुःख की घाटी बनाने के बदले उसे आनंद का उपवन बना सकते हैं।

आप पूर्ण स्वतंत्रता से जी सकेंगे - स्वयं में, अपने स्थान में, दूसरों के स्थान में नहीं। नकारात्मक कंपनों के बहाव से अप्रभावित आप अपनी सहज स्थिति में जी सकेंगे, अपनी शुद्ध एवं आनंदमयी चेतना की धारा में निमज्जित हो सकेंगे।

## चिंतन के बिंदु

मुझे अपनी चेतना को एक स्वच्छ, निर्मल एवं झिलमिलाते जलाशय के रूप में देखना है।

जब मैं पीछे हटकर खड़ा होता हूँ, तो मैं नकारात्मक कंपनों के अंतःप्रवाह को देख सकता हूँ। मुझे उनके साथ अपनी पहचान बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो बाहर से आया है, वह बाहर जा सकता है। वह मेरी चेतना का अभिन्न अंग नहीं है।

मेरी असली प्रकृति आनंद है। जब मैं आनंदावस्था में रहता हूँ, तब मैं संतुलन में हूँ।

अनासक्ति का अर्थ लोगों से दूर भागना नहीं है; उसका अर्थ है स्वयं के पास लौट आना। मुझे अपने साथ रहने दो; तभी मैं जानूँगा कि दूसरों के साथ कैसे रहना चाहिए।

जो विश्वास दूसरों के शब्द, वादे या भविष्यवाणी सुनकर आता है, वह अधिक दिन नहीं टिकेगा, क्योंकि वह उधार की वस्तु है। जो विश्वास अंदरूनी अनुभवों से आता है, वह टिकाऊ है।

दुनिया को दुःखों की घाटी न बनाकर उसे मैं आनंद का उपवन बना सकता हूँ।



## विराम चिह्न की कला

बंधुओं, आप साधक हैं, जिज्ञासु हैं और इसलिए पर्वतारोहियों के समान हैं। आप चढ़ते हैं अपनी चेतना के शिखर तक पहुँचने के लिए। चढ़ाई चाहे पहाड़ की हो या स्वयं की, शिखर तक पहुँचने के लिए आपको एक सोपान से दूसरे सोपान की तरफ बढ़ना है, एक-एक कदम आगे बढ़ना है। जितने ऊँचे आप चढ़ते जाएँगे, उतना ही आपको सावधान रहना होगा। ऊपर तेज हवाएँ चलती हैं। यदि आप संतुलित न रहे, तो वे आपको नीचे धकेल देंगी। जब हम महापुरुषों के जीवन का अवलोकन करते हैं, तो उनकी उपलब्धियों को देखकर अभिभूत हो जाते हैं, पर शायद हम इससे बेखबर हैं कि इन ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिए उन्हें कितनी अभिज्ञता और संतुलन की आवश्यकता थी। उनका ध्यान हटाने के लिए चारों ओर प्रलोभन थे, लुभावनी चीजें थीं। और कभी-कभी नीचे की गहरी घाटी में गिर जाने का डर भी उन्हें सताता था। इन सब संभावित बाधाओं के बावजूद वे आगे बढ़ते गए, क्योंकि उनका ध्येय चोटी तक पहुँचना था।

उन्होंने हमेशा अपने लक्ष्य को अपनी भीतरी आँखों के सामने रखा। उन्हें सतर्क, सावधान, जागरूक और संतुलित रहना पड़ा। वे शिखर तक क्यों पहुँचना चाहते थे? क्योंकि वहाँ की ताज़ी हवा, मनोहारी दृश्यावलि, नीचे की पृथ्वी और ऊपर के आकाश के सौंदर्य को निहार पाने का आनंद अपने आप में एक अनूठा अनुभव है।

जमीन पर खड़ा व्यक्ति इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि जो व्यक्ति एवरेस्ट की चढ़ाई कर रहा है, उसे किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वहाँ चाहिए पल-पल की सतर्कता। जैसे ही आप चढ़ने लगते हैं, आपको एहसास होता है कि चढ़ाई बहुत अधिक है, शिखर बहुत ऊँचा है। लेकिन यदि आपके अंदर हौसला है, आत्मविश्वास है, तो आपको डर नहीं लगेगा। आप अपने आप से कहेंगे, 'मैं चढ़ लूँगा।'

और आप चढ़ ही जाएँगे, क्योंकि आपके अतिरिक्त ऐसा कोई एजेंट नहीं है जो आपके जीवन की बातें तय करता है, आपको गरीब या अमीर

बनाता है। एक साधक होकर, आप अपने हर कृत्य का दायित्व स्वयं स्वीकार करते हैं। आप जानते हैं, 'यदि हर कदम के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ, तो कोई खतरा नहीं है। मैं अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच ही जाऊँगा क्योंकि मैं हूँ ही उसी के लिए।'

चढ़ते समय कभी-कभी आप सहारे के लिए किसी का हाथ थाम सकते हैं, लेकिन वह सहारा गौण होगा। आप किसी पर निर्भर नहीं रह सकते। इस तरह, न ही घमंड आपको छू सकेगा एवं न ही झूठी विनम्रता; दोनों ही स्थितियों में तीव्रता है। दोनों ही मनोवृत्तियाँ चरम स्थितियों की द्योतक हैं। दोनों का मतलब है दिखावा। जो व्यक्ति समाज में चमकने की कोशिश कर रहा है, नाम कमाने की कोशिश कर रहा है, वह पालतू कुत्ते के समान विनम्र बनने का दिखावा कर सकता है। पर यह दिखावा ही है, दूसरों का ध्यान अपनी ओर खींचने की एक चाल। आप सबको क्यों बताना चाह रहे हैं कि मैं कितना विनम्र हूँ? इसका मतलब यह हुआ कि आप अपनी विनम्रता का लाभ उठाना चाहते हैं।

सहज रहिए, स्वाभाविक रहिए, वही रहिए जो आप हैं! सिर्फ अपने आप को देखें! जब स्वयं पर नज़र रखने लगेंगे, तो आपकी चेतना इतनी सूक्ष्म हो जाएगी कि आपको हर समय ज्ञात होगा कि आप कहाँ हैं। यदि आप इतना जान लेंगे, तो पर्याप्त है। तब आपको संसार से अनुमोदन प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। और जब संसार का अनुमोदन आपके लिए कोई माने नहीं रखेगा, तभी संसार उसे देने के लिए आपके पीछे दौड़ेगा। यह विडंबनापूर्ण बात लग सकती है। लेकिन अब लोग आपकी मौलिकता को पहचानने लगेंगे। 'सच ही यह व्यक्ति सैर पर नहीं निकला है,' वे कह उठेंगे, 'यह स्वयं में मग्न हो गया है।'

असल बात यह है कि हम यहाँ मात्र जीने के लिए हैं, जैसे हैं, वैसे बने रहने के लिए हैं, न कि तगमे, पुरस्कार, डिग्री और प्रमाणपत्र का अंबार लगाने के लिए। हमारा सारा प्रयास वही बने रहने के लिए होना चाहिए, जो हम हैं। हम यहाँ किसी क्षणिक उपलब्धि के लिए नहीं हैं, न ही स्वयं के झूठे अहम् के लिए। हमारा लक्ष्य है उस सहज स्थिति में लौट जाना जो इतनी संतुलित है कि हम न तो ऊपर हैं न नीचे। उस स्थिति को प्राप्त करने



के लिए हमें पूरे दिल से मेहनत करनी होगी। हम उस सहज स्थिति की ओर तभी बढ़ सकते हैं जब हम स्वयं की निंदा करना बंद करेंगे, अपने आपको कोसना छोड़ देंगे। हम दूसरों से प्रशंसा, अभिमत, अनुमोदन आदि की चाहत पर रोक लगा देंगे। जब हम इस तरह की पुरानी सोच पर विराम चिह्न लगाएँगे, तब कितनी शांति से जीवन व्यतीत करने लगेंगे!

स्वयं के साथ शांति से बढ़कर कोई सुख इस दुनिया में नहीं है। यही खोजने के लिए हम दुनिया भर की खुशियों के पीछे भागते रहते हैं। हम सुंदर मनस्थिति में रहना चाहते हैं। लेकिन जब हम इन क्षणिक बाहरी खुशियों का सहारा लेते हैं, तब उनका प्रभाव समाप्त होने पर हम दुःखी हो जाते हैं, और तब हमें विदित होता है कि स्वयं के साथ सहजता से रहकर चिरस्थायी शांति प्राप्त करना क्यों महत्त्वपूर्ण है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप बाहरी दुनिया को त्याग दें। आपको संसार के सौंदर्य और वैभव को सराहना चाहिए। आपके पास पाँच सुंदर इंद्रियाँ हैं। दरअसल आपकी इंद्रियाँ इतनी साफ और स्वच्छ रखी जाती हैं ताकि आपको अन्य लोगों से भी अधिक स्पष्टता से चीजें दिखाई दें, ध्वनियाँ सुनाई दें, एवं स्वाद और सुगंध, भावनाओं और अनुभूतियों को अच्छी तरह से महसूस कर सकें। जब कोई सुंदर वस्तु आपके सामने आ जाए, तो आप उसे वैसे ही देखें जैसी वह है। कहने की बात यह है कि: आप मात्र अपनी इंद्रियों पर निर्भर नहीं हैं। जब आप आँखें बंद कर लेते हैं, तब भी सौंदर्य रहता है। इस तरह आप भीतर और बाहर दोनों जगह विद्यमान सौंदर्य को देख पाते हैं।

हममें से अधिकांश लोगों की समस्या यह है कि हम बाहरी सौंदर्य को तो देख पाते हैं, मगर भीतर जो सौंदर्य है, उसे नहीं। क्या यह विचित्र बात नहीं है कि इतने वर्षों तक बाहरी सौंदर्य को देखते रहने के बाद भी, जब हम आँखें बंद करते हैं, तो उसे अपने पास बनाए रखने में असमर्थ हो जाते हैं? जैसे ही हम आँखें बंद करते हैं, अंधेरा छा जाता है। इतने वर्षों तक बाहरी सौंदर्य को निहारते रहने के बाद भी अगर हमें भीतरी सौंदर्य को पहचानने का सूत्र या संकेत नहीं मिला, तो उन वर्षों के प्रयास का क्या प्रयोजन? आँखें खोलकर सौंदर्य के अनेक रूपों को देखना और सराहना

निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है, जैसे सूर्योदय का सौंदर्य, बसंत की बहार, बच्चों का नृत्य, और झुर्रियों से भरे वे चेहरे जो सुख और दुःख की कहानी कहते हैं। लेकिन हमारे अंदर भी सौंदर्य का खजाना है, हमारी अपनी गतिशील आत्मा। इस गतिशील आत्मा के बिना हमारी बाहरी आँखें बाहरी दुनियां को भी देख नहीं पाएँगी।

हमें उस गतिशील आत्मा को जानना है जिसका कार्य है अनुभव करना, याद रखना और आगे बढ़ना। उसकी उपस्थिति के कारण ही हम भीतरी पिपासा को शांत करना चाहते हैं। यही हमारी सच्ची पहचान है। यह हमारे शरीर के बाहरी खोल के अंदर बैठी हुई है। इस पर ध्यान केंद्रित करने पर हमें बोध मिलता है, 'जिसे मैं आज तक 'मैं' कहता था, वह तो बाहरी खोल मात्र है। यह तो मेरा उपकरण है। सत्व इसके अंदर है। वह सत्व मैं हूँ।'

साधक अपने अंतर में देखता हुआ चेतना के प्रत्येक सोपान पर चढ़ता जाता है जब तक कि वह केन्द्र तक न पहुँच जाए, उस अभ्यन्तर मंदिर तक। अंततः आप उस मंदिर तक पहुँचकर उस सिंहासन पर बैठ जाएँगे जो आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। लोग उसे ईश्वर का सिंहासन कहते हैं। वह कुछ इने-गिने लोगों मात्र के लिए आरक्षित नहीं है। वह हममें से हर एक की प्रतीक्षा कर रहा है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति के अंतर में वह सिंहासन है। इसीलिए हमारे अंतर्मन में एक अभिलाषा है, स्वप्न है, तलाश है। वह आद्यरूप, वह सिंहासन कभी-कभी हमारा आह्वान करता है, 'मेरे पास आ जाओ!' और साधक उस पुकार को सुनकर आगे बढ़ता है।

लेकिन आगे बढ़ने के लिए, शिखर पर चढ़ने के लिए, आपको बोझमुक्त होना चाहिए। यदि आप पर बहुत सारा सामान लदा हो, तो आप चढ़ नहीं पाएँगे। गुरुत्व बल आपको नीचे खींचेगा। महात्मा बुद्ध मूढ़ नहीं थे कि उन्होंने राजप्रासाद, सुंदर पत्नी और बच्चे सबको छोड़ दिया। वे पलायन नहीं कर रहे थे। वे सत्य की खोज में थे। और न ही महावीर बुद्धिहीन थे जब उन्होंने अपनी पत्नी से वार्तालाप के दौरान कहा, 'प्रिये, हमारा राज्य कहाँ है? क्या यह सिर्फ पृथ्वी पर है? इस तरह का राज्य नष्ट हो जाएगा। इस तरह का राज्य लड़ाई-झगड़े और युद्ध को जन्म देता है।

क्या हम ऐसा राज्य उपलब्ध नहीं कर सकते जहाँ स्थायी चेतना व्याप्त हो?’ इस तरह त्याग करने में प्राप्ति है। सच्चा त्याग उस भीतरी साम्राज्य, उस अंतर्भूमि की पूर्ण अनुभूति है।

वह अंतर्भूमि रिश्तों को गहरा अर्थ एवं एक निकटता प्रदान करती है। जब पति-पत्नी एक दूसरे को प्रेरित करते हैं, तो वे एक दूसरे के बेहतरीन साथी बन जाते हैं। उनका संप्रेषण अनंत मिलन में परिवर्तित हो जाता है। विवाह का असली प्रयोजन कर्मों को काटना है, एक-दूसरे का पूरक बनना है। जब हम उस अंतर्भूमि पर जीने लगते हैं, तब हम आपस में संचार करके यह जानना चाहते हैं कि हमारे जीवन का ध्येय क्या है। जब एक निराश होने लगता है, दूसरा उसे संभाल लेता है। ‘यह अंधकार गुजर जाएगा,’ वह अपनी जीवनसंगिनी को समझाता है, ‘हमें धैर्य रखना होगा, जल्द सूर्योदय हो जाएगा।’ जब एक चिड़चिड़ा हो जाता है, तो दूसरे को बात बिगड़ने से रोक लेना चाहिए। ऐसी कोई पीड़ा नहीं है जो स्थायी हो, एवं न ही ऐसा कोई सुख है जो स्थायी हो। स्थायी क्या है? भीतरी आनंद, शांति - बाकी सभी आता-जाता रहता है।

बाहरी विश्व को देखने के लिए और भीतरी सौंदर्य का अनुभव करने के लिए किसी मठ में जाने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने घर को एक मठ में बदल सकते हैं! और क्यों नहीं, आजकल कितने मठ तो सत्ता की तृष्णा बुझाने के राजनीतिक अखाड़े बन गए हैं!

मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक परिवार, आपमें से प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने छोटे से घर को एक सुंदर से मठ में बदल दे और वहाँ एक सार्थक जीवन जीए, अपनी समझ को परिपक्व करे। हमें इस पृथ्वी पर सत्तर या अस्सी वर्षों का जो समय मिला है, वह बहुत ही छोटी अवधि है। आप उसका उपयोग या तो अकेले रहकर कर सकते हैं या ऐसे लोगों के साथ जो आपकी सी सोच, आपकी सी समझ रखते हैं। आप उसे अपने मित्रों और पड़ोसियों के साथ बिता सकते हैं या ऐसे लोगों के साथ जिनसे आप प्रेम करते हैं, जिनके प्रति आपके मन में करुणा है। दुनियां किसी की बपौती नहीं है। ओछेपन या संकीर्णता की ज़रूरत नहीं है। जाति, धर्म, आयु, रंग

या भाषा का प्रतिबंध नहीं है। हम सब एक भाषा बोल सकते हैं - हृदय की, नजर की और भावना की।

संवर का अर्थ है आश्रव के प्रवाह को रोकना। पहले हमने आश्रव पर ध्यान किया, यह जानने के लिए कि उसका प्रवाह किससे बनता है, कहाँ से आता है - बाहर से या अंदर से। जैसे ही हम समझ जाएँगे कि वह कैसे काम करता है, हम उसे रोक सकते हैं।

जब तूफान आनेवाला है, और रेडियो पर आपको सुनाई दे कि वह काफी विध्वंसकारी होगा, तो आप क्या करेंगे? क्या आप सतर्क नहीं हो जाएँगे और सावधानी नहीं बरतेंगे? क्या आप उठकर खिड़की-दरवाजे बंद नहीं करेंगे, बाहर पड़ी चीजों को समेटकर घर के अंदर नहीं लाएँगे? यदि आप खिड़कियाँ बंद नहीं करेंगे, तो क्या होगा? घर धूल, मिट्टी और पानी से भर जाएगा।

संवर का मतलब है तूफान के आगमन पर खिड़कियाँ बंद करना। जीवन में ये तूफान कषाय हैं - क्रोध, मान, माया और लोभ। क्रोध एक तूफान है। जब वह आता है, तब पहले हमारे मन की शांति भंग करता है। फिर वह उन सब चीजों को नष्ट कर देता है जो आसपास हैं। क्रोध विरूपित करता है, अंधा बना देता है और दृष्टि को धूमिल करता है। जिस व्यक्ति का हृदय और आँखें गुस्से से जल रहे हैं, वह कितना कुरूप लगता है। उसे देखकर मुस्कराएँ और आप देखेंगे कि उससे आपकी यह मुस्कराहट बरदाश्त नहीं होती। 'क्यों दांत निपोर रहे हो?' वह आप पर झल्ला पड़ेगा।

अगर आप गुस्से में हैं और आपका बच्चा रोता हुआ पास आकर पुकारता है, 'माँ', तो शायद आप उसे परे धकेलते हुए कह देंगे, 'जाओ यहाँ से'। आपका मित्र आपसे मिलने आएगा और दस वर्षों की मित्रता आप दस क्षणों में ही नष्ट कर डालेंगे। 'मैं तुमसे नफरत करता हूँ' - ये शब्द अंतःकरण पर बहुत गहरा प्रभाव डाल सकते हैं। इस प्रभाव को कैसे मिटाएँ? आप कह सकते हैं, 'मुझसे गलती हो गई, मुझे क्षमा कर दो,' पर इससे उन कटु शब्दों की चुभन नहीं जाती है। वे तीर के समान किसी के दिल में घुसते हैं और दिल को लहलुहान कर देते हैं। पीड़ा और घाव ऐसे

ही रहते हैं। आप इस तरह के कठोर शब्दों का प्रयोग क्यों करते हैं? मैं नहीं कहता कि गुस्से को दबा देना चाहिए, मगर देखिए तो सही कि वह आया कहाँ से है? उन शब्दों को महसूस कीजिए जिन्हें आप कह रहे हैं। उनके प्रतिघात अवश्य होंगे, आपमें भी एवं दूसरों में भी। हर शब्द में एक स्पंदन है जो आपके अंतःकरण पर असर करता है।

एक लकड़हारा जंगल से गुजर रहा था। वहाँ एक सिंह को देखकर बहुत ही भयभीत हो गया। न जाने क्यों, सिंह को उस पर दया आ गई और उसने लकड़हारे को जंगल में छिपे खजाने का रहस्य बता दिया। लकड़हारे को लगा मानो उसकी किस्मत खुल गई क्योंकि बेटी की शादी के लिए उसे रुपयों की सख्त जरूरत थी। शादी के अवसर पर उसने अपने रिश्तेदारों के साथ अपने मित्र सिंह को भी न्यौता दिया। खैर, सिंह को देखकर मेहमान घबरा गए। लकड़हारे ने उन्हें समझाया, 'डरो मत, मेरा मित्र सिंह एक बूढ़े कुत्ते के समान पालतू है।'

लकड़हारे को ये शब्द सुनकर सिंह के मन को ठेस पहुँची, मगर वह चुप रहा। कुछ दिन बाद लकड़हारा एक बार फिर से जंगल की ओर गया। इस बार सिंह ने उसे कोई दूसरा खजाना नहीं दिखाया, बल्कि उससे कहा, 'अपनी कुल्हाड़ी से मेरे पैर पर चोट करो।'

लकड़हारे ने पूछा, 'क्या कहा? तुम चाहते हो कि मैं कुल्हाड़ी से तुम्हारे पंजे पर चोट करूँ?'

'हाँ,' सिंह ने उत्तर दिया। 'एक महीने बाद वापस आना। तब हम इसके बारे में बात करेंगे।' लकड़हारे ने सिंह के कहे अनुसार किया और एक महीने बाद जंगल में लौट आया।

सिंह ने कहा, 'देखो, मेरे पंजे पर तुम्हारे द्वारा किए गए घाव का कोई निशान दिख रहा है?' लकड़हारे ने देखा कि घाव पूरा-पूरा ठीक हो गया है और वहाँ कोई निशान नहीं है। सिंह ने आगे कहा, 'शरीर के घाव भर गए हैं, पर तुम्हारे शब्दों ने मुझे जो घाव दिया, वह अब भी ताज़ा है।'

इसलिए शब्दों का विवेक से उपयोग करें। उदाहरण के लिए, अगर आपके मन में क्रोध हो और आप कटु शब्द कहने जा रहे हैं, तो अपने

आप से कहें, 'खिड़की बंद करने का समय आ गया है।' जिस खिड़की को सबसे पहले बंद करना है, वह है आपका मुँह। मुँह बंद रखकर आँखों को खुला रखना बेहतर है ताकि यह देख सकें कि आपके निकट कौन है। क्रोध को दबाने की कोई ज़रूरत नहीं है। भीतरी भावनाओं पर नज़र रखें और उन्हें वाष्प में बदलने दें, किसी सृजनशील ऊर्जा में परिवर्तित होने दें। जिस व्यक्ति पर गुस्सा आ रहा है, उसके और अपने बीच दूरी बनाए रखें। सबसे पहले अपने आपसे कहें, 'मैं गुस्से में हूँ। जो भी हुआ, वह मुझे अच्छा नहीं लगा।'

इसी के साथ-साथ, संवर का उपयोग करें, स्वयं को बोलने से रोकें। यदि आप असंतुलन की अवस्था में बोलेंगे, जब क्रोध की ऊर्जा अधिक हो, तब आपके शब्द प्रवर्द्धित हो जाएँगे। इसलिए सामान्य स्थिति में आने तक स्वयं से रुकने को कहें।

फिर विचार करें, 'मुझे क्रोध क्यों आ रहा है? क्या गलती किसी और की थी या मेरा भी इसमें हिस्सा था? क्या ताली बजाने के लिए दो हाथ ज़रूरी नहीं होते? क्या भविष्य में इससे बचा जा सकता है? बचने के तरीके क्या-क्या हैं?' जब आपके पास अन्वेषण का यह भाव है, जब आपके पास यह अवकाश है, तब आप क्रोध की ऊर्जा को बाहर निकलने नहीं देंगे। आप प्रेशर कुकर के समान उसे अंदर रोककर रखेंगे। फिर भाप को धीरे-धीरे बाहर निकालेंगे।

उसके बाद, अधिक शब्दों में नहीं, अपितु सावधानी से चुने गए कुछ शब्दों में सौम्यता से कहें, 'मेरे गुस्से का यह कारण था। मैं इसे पाना चाहता हूँ।' या, 'इसने मेरी शांति भंग की है। मगर मैं अपने क्रोध से आपकी शांति में खलल नहीं डालना चाहता।' इस रीति से आप क्रिया, प्रतिक्रिया और अंतर्क्रिया के दुश्चक्र को तोड़ सकते हैं। आपने क्रोध की पीड़ा झेली है और अब नहीं चाहते कि किसी और को वह पीड़ा झेलनी पड़े। आप चाहते हैं कि उसका वहीं अंत हो जाए। दूसरे व्यक्ति के प्रति करुणा का भाव व्यक्त करके आप उसकी चेतना को जागृत कर सकते हैं। चिल्लाकर आप क्या हासिल कर पाएँगे?

इसलिए जब क्रोध आए, तब इन तीन चरणों का पालन करें। पहले, अपने भाव को पहचानिए। ऐसी क्या अपेक्षा थी जिसने आपके शरीर में यह भाव पैदा किए, उष्ण ऊर्जा का यह जमाव? दूसरे, इस ऊर्जा को तब तक अंदर ही रखिए जब तक कि आप अपना संतुलन पुनः प्राप्त न कर लें। तब तक अपने आपको बोलने की अनुमति मत दें। तीसरे, जब आप फिर से शांत हो जाएँ, उस व्यक्ति को बताएँ कि किस बात ने आपको दुःखी किया, आपकी भावनाओं को क्यों ठेस पहुँची। यदि वह व्यक्ति संवेदनशील होगा, तो आपके चुनिंदा सौम्य शब्द उसके

अंतःकरण पर जादू करने लगेंगे। और यदि वह आपकी बात नहीं समझ सकता, तो चिल्लाने का भी उस पर कोई असर नहीं होने वाला है।

दूसरा तूफान मान यानी अहंकार का तूफान है। जब अहंकार आपके अहम् को गुब्बारे की तरह फुला देता है और आप कह उठते हैं, 'मैं उस व्यक्ति से भी बड़ा बनूँगा,' तब इसके क्रूर पहलू पर ध्यान दीजिए। अहम् चाहता है कि आप उस व्यक्ति को पीछे छोड़कर उसमें हीनता की भावना भर दें। यदि आप क्रूर न होते, तो आप ऐसा कुछ न करते जो दूसरे को आपसे छोटा महसूस कराए। यह भीतरी क्रूरता है क्योंकि आप अपने आप से अनभिज्ञ हैं, अपरिचित हैं।

हमें प्रयत्न करना चाहिए कि दूसरे लोग स्वाभाविक महसूस करें। इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि जो वस्तुएँ आपके पास हैं, वे दूसरों के साथ बांटने के लिए हैं, शांति के लिए, सहूलियत के लिए, संप्रेषण के लिए हैं; वे दूसरों पर रौब जमाने या भेद-भाव पैदा करने के लिए नहीं हैं। समझने की कोशिश कीजिए कि वस्तुओं के प्रति आपके दिल में क्या भाव है। वस्तुएँ अपने आपमें महत्वहीन हैं; उनके प्रति आपका भाव ही महत्वपूर्ण है। अपने आपसे पूछिए, 'क्या मैं कोई खेल खेल रहा हूँ? क्या मैं लोगों के साथ हूँ या उनसे ऊँचा बनने की कोशिश कर रहा हूँ?' लोगों के साथ रहना उत्तम है; उनके सामने ऊँचा बनने की कोशिश अज्ञानता का सूचक है।

अहंकार या अहम् आत्म-सम्मान नहीं है। अहम् संपूर्ण मस्तिष्क पर हावी होकर व्यवहार को नियंत्रित करने लगता है। आत्म-सम्मान आंतरिक

जागरूकता से, आंतरिक संतुलन से पल्लवित होता है। अहंकार बाह्य परिस्थिति पर निर्भर करता है; आत्म-सम्मान हर परिस्थिति में स्थिर रहता है। अहम् तापमापी के पारे के समान है, उष्णता के अनुरूप ऊपर और नीचे होता रहता है। आत्म-सम्मान का अपना ही एक संतुलन है, बाहरी मौसम उसपर कोई असर नहीं कर सकता। साधक वही है जो संतुलन बनाए रख पाता है।

तीसरा आंतरिक शत्रु है लोभ। जब लोभ हम पर नियंत्रण पा लेता है, तो हमारी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। हम अपना रहन-सहन निरंतर बदलने लगते हैं। लोभ जीवन को नष्ट कर देता है और इससे जो अंदरूनी पीड़ा होती है, उसे कोई भी औषधि शांत नहीं कर सकती। कई लोग जिन्हें राजनीति, व्यवसाय या धार्मिक पद के शिखर पर पहुँचने के बाद सेवानिवृत्त होकर सामान्य जीवन बिताना पड़ता है, उन्हें इतनी पीड़ा होती है कि वे अंदर से टूट जाते हैं। अतीत में उनका जीवन वैभवपूर्ण था, मगर जब उनकी परिस्थितियाँ मौसम के समान बदलने लगी और उनके अहम् की माँगें पूरी न हो सकी, तब उन्हें कुंठा का सामना करना पड़ा। उनके लिए यह एक मानसिक यातना है। ये लोग तभी बच पाते हैं जब किसी रुचिकर कार्य में इनका दिल लग जाए।

लोभ को खत्म करने का अर्थ यह नहीं है कि आप आजीविका कमाना ही छोड़ दें।

इसका तात्पर्य है अपने आपसे यह सवाल पूछना, 'क्या मैं किसी और से अपनी तुलना कर रहा हूँ, या जो कुछ मेरे पास है, उसी से खुश हूँ?' लोभ एक प्रचंड भूकंप के समान है। यह जीवन को तहस-नहस कर सकता है। इसलिए आप विराम चिह्न की कला आजमाकर कह दें, 'बस, बहुत हो गया!'

जब आपके अंदर क्रोध, अहंकार और लोभ हो, तो चौथे शत्रु का आगमन होता है - माया। माया यानी कपट, धोखा। प्रथम तीन को बनाए रखने के लिए आपको इसका सहारा लेना पड़ता है। आपको वह होने का



अभिनय करना पड़ता है जो आप नहीं हैं। आपको हमेशा मुखौटा पहने रहना पड़ता है, अपना रूप छिपाना पड़ता है। इस छलावे को बनाए रखना आसान नहीं है। एक दिन आप नींद से उठेंगे और पाएँगे कि यह मुखौटा, यह सौंदर्य आपके पास नहीं है। इससे तो चिंतन करना बेहतर है कि किस तरह विराम लगाएँ और स्वयं को देखें, किस तरह वही रहें जो आप हैं।

जैसे-जैसे आप संवर का अभ्यास करेंगे, आप उसका उद्देश्य समझने लगेंगे। यह आपके आरोग्य के लिए है - आपके आध्यात्मिक आरोग्य के लिए। यदि स्वयं के शिखर तक चढ़ने की आपकी अभिलाषा खरी है, तो आप आंतरिक आरोग्य चाहेंगे। यह किसी को खुश करने के लिए या किसी को दिखाने के लिए नहीं होगा; यह होगा सिर्फ आपके अपने लिए। जिस तरह दांतों को स्वस्थ और स्वच्छ रखने के लिए आप मंजन करते हैं, उसी तरह आप अंतःकरण की अशुद्धियों को शुद्ध करते हैं। जिस तरह ताजगी के एहसास के लिए आप नहाते हैं, न कि दिखाने के लिए कि आपकी त्वचा कितनी कोमल है उसी तरह आपको अपने मन के पोरों को साफ करना चाहिए ताकि आप स्पष्ट रूप से सोच सकें, बिना किसी विकृति के। महान से महान व्यक्ति भी आरोग्य के लिए साधना करते हैं। इस तरह साधना करने पर बाहरी बैसाखियों की कोई आवश्यकता नहीं रहती। साधक कोई भी अस्थायी वस्तु नहीं चाहता; उसे केवल वह अंतर्दृष्टि चाहिए जो चिरस्थायी होती है।

इसलिए जब क्रोध, अहंकार, माया या लोभ का तूफान आपके अंतःकरण पर छानेवाला हो, अपने सामने 'संवर' शब्द को रख लें। अपने आपसे कहें, 'नहीं, मुझे रुकना चाहिए। मैं चुप रहूँ, प्रतिक्रिया नहीं करूँ, क्रूर नहीं बनूँ।' नकारात्मक कंपनों और स्वयं के बीच में दूरी बनाए रखकर आप उन कंपनों को परावर्तित कर सकते हैं। आपकी चिरस्थायी जागरूकता के प्रकाश से वे भाप बनकर उड़ जाएँगे। इस तरह आप अपने अंतःकरण के निर्मल जल में कर्मों के अंतःप्रवाह को रोक सकेंगे। आप अंतःकरण की गहराई तक देख सकेंगे और अवशिष्ट को दूर कर सकेंगे।

## चिंतन के बिंदु

जब तूफान आनेवाला हो, खिड़कियां बंद कर दें। जीवन में आनेवाले तूफान हैं - क्रोध, मान, माया और लोभ।

मैं क्रोध द्वारा आनेवाली पीड़ा को देखूँ, ताकि मैं अन्य में यह पीड़ा नहीं पैदा करूँ।

मैं लोभ द्वारा आनेवाली पीड़ा को देखूँ, कैसे अपने हिस्से से अधिक बटोरने से दूसरों को उनकी जरूरत से कम मिल पाता है।

मैं देखूँ कि अहम् कैसे दूसरों को नीचा दिखाने की कोशिश करता है।

मैं देखूँ कपट के दिखावों को, कैसे वह मुझसे और दुनियां से सत्य छिपाने पर आधारित है।

यदि मैं अपने ध्येय को सदैव आंतरिक दृष्टि के समक्ष रखूँ, तो मैं शिखर तक पहुँच जाऊँगा। मैं ऐसा कर सकता हूँ क्योंकि मेरे जीवन पर किसी भी बाहरी शक्ति का नियंत्रण नहीं है। मैं इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए ही यहाँ पर हूँ।



## आत्म-परिष्कार की कला

गौर करें कि नदी किस तरह से समुद्र की ओर जाती है। वह समुद्र तक क्यों पहुँचती है? क्योंकि उसके दो किनारे हैं जो उसे बिखरने से रोकते हैं। ये किनारे उसे सुरक्षा देते हैं और उसका मार्गदर्शन करते हैं जिससे वह सहजता से आगे बहती हुई अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच जाती है। इस सुरक्षा के बिना समुद्र से उसका मिलन असंभव है। यदि आगे बहने के बजाए, वह अपने दोनों किनारों से लड़ती हुई उन्हें नष्ट कर देगी, तो वह किसी रेगिस्तान में पहुँचकर सूख जाएगी।

एक तरह से, जीवन भी बहती नदी के समान ही है। हम खोज रहे हैं सत्य को, जीवन की वास्तविकता को। अपने समुद्र को, अपने खजाने को पाने के लिए हमें प्रयत्नशील और समर्पित रहना होगा। यदि हमारा मन बिखरा-बिखरा रहेगा, हमारी ऊर्जा भी बिखर जाएगी, और हम समुद्र तक, अपने सत्य तक कभी नहीं पहुँचेंगे। पर यदि हम अपने दोनों ओर के किनारों को बनाए रखेंगे, तो हम स्वतंत्रता से आगे बढ़ सकते हैं, हमारी ऊर्जा बहती रहेगी, और अंततः हम अपनी आत्मा तक पहुँच जाएँगे।

क्या हैं ये किनारे जिन्हें निर्मित करके हम अपनी वास्तविकता का दिशा-निर्देश पा सकते हैं? इन्हें अनुशासन कहा जाता है। यह अनुशासन वह बाह्य धर्मादेश नहीं है जो नियम स्थापित करते हैं, 'तुम यह करोगे', 'तुम वह नहीं करोगे।' जिसे हम अनुशासन कहते हैं, वह नियम या व्रत से अलग है। व्रत बाहरी दबाव से थोपे जाते हैं, जबकि अनुशासन भीतरी आत्म-जागृति की उपज है। ये इस अनुभूति से निकलते हैं कि इनका पालन न करने पर हम भटक जाएँगे। ये इस समझ से उत्पन्न होते हैं कि अपनी ऊर्जा बिखरने से व्यक्ति बंजर भूमि में भटक जाएगा। बाहरी दबाव के बजाय भीतरी चेतना की आवाज़ सुनकर आप जान जाएंगे कि आपको सचमुच क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए।

जब आप आत्म-जागृति के द्वारा अपने आपको तैयार करते हैं, तो आप अपने हर कृत्य का, हर शब्द का, हर विचार का दायित्व स्वयं पर

लेते हैं। आप अव्यवस्थित ढंग से काम नहीं करते। आप आत्म-निरीक्षण करते हैं। आप जानते हैं कि क्या अंदर ले रहे हैं और किसे अंदर आने से रोक रहे हैं। आप जानते हैं कि यदि कोई अवांछित वस्तु अंतःकरण में घुस जाए, तो वह वहाँ जड़ें जमा लेगी। इसलिए आप स्वयं से कहते हैं, 'मैं इसे क्यों ले रहा हूँ?'

विचारों का निरीक्षण, साथ ही वाणी और संबंधों का निरीक्षण करना आपका स्वभाव बन जाता है। आप इस नियम से अवगत हैं कि संपर्क में आने वाली हर वस्तु जीवन में तरंगें पैदा करती है। अंततः वह आपकी शांति में विघ्न डालती है। इसलिए थोड़ा समय निकालकर अपने संपूर्ण जीवन और अपनी वास्तविक ज़रूरतों पर विचार कीजिए। बस, आप पर यही जिम्मेदारी है कि अपने आपसे पूछें, 'मुझे क्या चाहिए? क्यों चाहिए? कितना चाहिए?'

यहाँ पर सब कुछ है, पर हमें सीखना होगा कि चयन कैसे करें? जब हम ये सवाल बार-बार पूछेंगे, तो धीरे-धीरे समझने लगेंगे कि संसार हलवाई की दुकान के समान है जिसे देखकर कभी-कभी हम बच्चों के समान बन जाते हैं। दुकान में रखी मिठाइयाँ रंग-बिरंगी और लार टपकानेवाली हैं। सुंदर कागज़ में लिपटी हैं। वे हमें ललचाती हैं और देखते ही देखते हम उन्हें खाने लग जाते हैं, बिना सोचे कि इनसे हमारे स्वास्थ्य पर, हमारे दाँतों पर, हमारे खून में शक्कर की मात्रा पर क्या असर होगा। जब हमारा मन बालक बन जाता है, वैसी अपरिपक्व अवस्था में है, तो वह हर वस्तु को छीनकर अपने पास रखना चाहता है। साथ ही साथ, वह हर वस्तु को अधिक मात्रा में चाहता है। एक बार यह छीनने की आदत जीवन में आ जाए, वह उसी तरह काम करने लगेगी जिस तरह शक्कर रक्त-धारा में पहुँचने पर करती है। हम तुरंत ऊर्जस्वी महसूस करते हैं, पल भर के लिए हम सातवें आकाश में पहुँच जाते हैं, पर बाद में उतनी ही तीव्रता से हम म्लान पड़ जाते हैं, हमारी सारी ऊर्जा निकल जाती है।

इसीलिए आंतरिक अनुशासनों की आवश्यकता है। उनके बिना हम हमेशा एक ऐसे मन द्वारा शासित होंगे जो निरंतर भटकता रहता है, खुशी के शिखर और दुःख के गर्त के बीच।

अपनी खोज में द्रष्टाओं ने इन बारह भावनाओं को पाया है, जिन पर उन्होंने चिंतन किया, ध्यान किया एवं सम्यक् दृष्टि प्राप्त की। सातवीं, आठवीं और नवीं भावना - आश्रव, संवर और निर्जरा - परस्पर में गहराई से जुड़े हुए हैं। आश्रव में अंतःप्रवाह पर ध्यान रखा जाता है, खुले द्वारों पर, आंतरिक कमजोरियों पर। संवर में क्रिया का आग्रह है - अवांछित वस्तुओं को भीतर आने से रोकने पर जोर है। यह चेतना रूपी झील के द्वार बंद करता है। निर्जरा में पहले से जमा नकारात्मक कंपनों को हटाया जाता है जो आपके अंतःकरण पर हावी हो गए हैं।

आप एक निरीक्षण मीनार में हैं। जब आप इसकी ऊँचाई से अपने जीवन का अवलोकन करते हैं, तो क्या पाते हैं? आपको मिलते हैं आपके व्यसन। वे कुछ भी हो सकते हैं, जैसे धूम्रपान करना, शराब पीना, अधिक खाना, यौन-क्रियाओं में अत्यधिक लिप्ति, धन या प्रसिद्धि का लोभ। ये सभी आपको कमजोर करते हैं। ये सभी ढहते मकान का कमजोर सहारा हैं। इन पर निर्भर करके आप कभी मजबूत नहीं बन सकते।

इसलिए जाग्रत व्यक्ति पूछता है, 'यह व्यसन कब शुरू हुआ? मैं कितना कमजोर हो गया हूँ? मैं शांत नहीं हूँ। मैं स्वयं के साथ नहीं हूँ। इस व्यसन के कारण मेरे जीवन में घाव लग गए हैं। मैं आनंद की खोज में निकलता हूँ और मुझे मिलती है पीड़ा।' साधक अपने आत्म-विश्लेषण की गहराई में जाता है। 'तथाकथित सुखों की खोज में मेरा मन अनेक दिशाओं में दौड़ रहा है। अंत में जब मैं बैठकर देखता हूँ तो क्या पाता हूँ? इतने वर्षों में क्या मुझे ऐसी कोई खुशी मिली है जो मुझे संतुष्ट करती है, जो मुझे उठाती है? क्या मैं अपने विगत जीवन को देखकर दुःख और अफसोस महसूस करता हूँ? क्या मेरी स्मृतियाँ मेरे ऊपर काले बादलों की तरह घुमड़ रही हैं?'

इस तरह अवलोकन करते हुए आप अपने विचारों, अपनी आवश्यकताओं के स्रोत पर पहुँचते हैं, अपनी इच्छाओं की गुणवत्ता को परख पाते हैं, अपने रिश्तों के अर्थ को जान जाते हैं। जब आप देखते हैं कि आपके मन में किस तरह के विचार आते हैं, तो आप यह भी देख पाते हैं कि ये विचार क्यों आते हैं। उनका आपके साथ क्या संबंध है? विचार तभी

आएंगे जब उनका आपके साथ कोई संबंध हो। यदि आपने इन विचारों के संबंध में कुछ देखा या सुना न हो, तो मन में ये विचार नहीं आएंगे। वे आएंगे, तो उनके साथ आपका कोई संबंध जरूर होगा।

अगला चरण सामने ही है - अब आप अपने अवांछित विचारों को घुसपैठियों के रूप में देखते हैं। आप अच्छी तरह से जानते हैं कि ये विचार आपको नहीं चाहिए, इसलिए अपने आप से पूछते हैं, 'मैं इन्हें क्यों आने दे रहा हूँ? क्या मैं प्रयत्न करके इन्हें रोक नहीं सकता? क्या मैं अपनी इच्छा शक्ति का, अपने आत्म-वीर्य का प्रयोग नहीं कर सकता? क्या मुझमें यह आत्म-शक्ति नहीं है?' और इस तरह आप अपनी शक्ति से अवगत हो जाते हैं। और आप यह कहते हुए इस इच्छा शक्ति का प्रयोग करने लगते हैं, 'जो मुझे नहीं चाहिए, वह भीतर न आए।'

जब आप अवांछित तत्त्वों के प्रवेश को रोकने के लिए समय निकालते हैं, तो आपका अभ्यास अपनी शक्ति की आंतरिक अभिज्ञता से एवं उस इच्छा से उत्पन्न होता है जिससे आप अपने जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं। अब जो आप करते हैं वह एक कुदरती प्रवाह का नतीजा है, न कि किसी बाहरी दबाव का।

संवर में आप स्वयं के साथ हैं। यदि निरंतर नई प्रतिबद्धताएं या नए संबंध आते रहते हैं, तो आप अपने विचारों को, अपने मनोभावों को, अपने जीवन को देख नहीं पाएंगे। जब आप रुक जाएंगे, तो आप देखने की स्थिति में आ जाएंगे। तब आप निश्चय करेंगे कि आपको कौन से विचार नहीं चाहिए। आप दृढ़ता से कहेंगे, 'ये भीतर न घुस पाएँ।' यदि फिर भी ये विचार घुसते चले आएँ, तो आप समझ जाते हैं कि आपके अंदर कोई कमजोरी है। इस कमजोरी के कारण आप उन विचारों को भी अंदर आने दे रहे हैं, जिन्हें आप नहीं चाहते हैं। ज़रा रुककर स्वयं को देखेंगे, तो आप उन व्यसनों को देख सकेंगे जो आपको बाँधे हुए हैं या आपको प्रभावित कर रहे हैं।

बाँध अर्थात् बाँधना। जब आप कर्म सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में अपने व्यसनों को देखते हैं, तो आप समझ जाते हैं कि ये आंतरिक कमजोरियाँ आपको पुद्गल के साथ बाँध रही हैं। जब आप राग या द्वेष की अवस्था में हैं, तो आप अपने वास्तविक स्वभाव में नहीं हैं। आपकी ऊर्जा का बहाव

अवरुद्ध है। आपकी आत्मा अपने गंतव्यस्थान की ओर बढ़ने के लिए स्वतंत्र नहीं है। पुद्गलों का कुछ अवशेष आपकी आत्मा के ऊपर बादल के समान छाया हुआ है और आपकी चेतना को प्रभावित कर रहा है। इस प्रभाव के कारण आप बिना किसी अभिज्ञता से बोलते हैं, सोचते हैं, कार्य करते हैं - विकृति के साथ, कषायों के साथ। इस तरह ये अवशिष्ट पुद्गल गुरुत्व बल की तरह काम कर रहे हैं और अपने ही जैसे स्वभाव के अन्य अवशिष्टों को आपकी ओर खींच रहे हैं। यदि इस अवशिष्ट को आप नहीं छोड़ेंगे, तो आगे नहीं बढ़ पाएँगे, और यह बोझ आपको नीचे खींचकर गिरा देगा।

यह नवाँ चरण इसी बंध का इलाज है। इसे निर्जरा कहते हैं। निर्जरा का अर्थ है गिराना, तोड़ना, हटाना - उन बातों को जो आपको बाँधे हुए हैं, आपके व्यसनों और लगावों को।

सबसे पहले इस चिपकनेवाले अवशिष्ट को हटाने की प्रणाली पर विचार करें। हम सोचते हैं कि वस्तुएँ हमें जकड़ी हुई हैं, पर वास्तव में हम इन वस्तुएँ को जकड़े हुए हैं। एक बंदर था जिसने एक घड़े में हाथ डालकर मुट्ठी भर चना उठा लिया। घड़े का मुँह इतना संकरा था कि चने से भरी उसकी मुट्ठी बाहर नहीं निकल सकी। उसने जोर लगाकर खींचा, मगर हाथ फिर भी बाहर नहीं आया। वह चिल्लाने लगा, 'इस घड़े ने मुझे पकड़ लिया है!' तब मदारी ने आकर बंदर को दो झापड़ लगाए और कहा, 'मूर्ख बंदर! तेरा हाथ घड़े में इसलिए फँस गया है क्योंकि तूने इतने सारे चने मुट्ठी में भर लिए हैं!' बंदर ने चने के दाने छोड़ दिए और उसका हाथ मुक्त हो गया।

यही बात हमारे जीवन में भी होती है। हम लोभी हैं और वस्तुओं को पकड़े हुए हैं। इन व्यसनों को छोड़ दीजिए, और आप मुक्त हो जाएँगे! कोई भी इस संसार से बंधा नहीं है। आपको बाँध रखा है आपके अपने व्यसनों ने।

दुर्भाग्य से एक व्यसन तो अप्रसन्नता ही है। उदाहरण के लिए, जब कोई भी आपके व्यसनों को समर्थन देने के लिए तैयार न हो, तब आपको कैसे लगता है? आप समझते हैं कि वे मित्रता नहीं निभा रहे हैं। या काम से घर लौटने पर क्या होता है, यह देखिए। दिन भर लोगों के साथ व्यवहार

करते-करते आपने क्या एकत्रित किया है? आपने दूसरों की भावनात्मक समस्याओं को अपने सिर पर ले लिया है या फिर दूसरों को अपनी समस्याओं के लिए कोसा है। अब क्या रात भर आप इन समस्याओं से जूझते रहेंगे? यदि हाँ, तो यह सूचित करता है कि आपको दुःख पालने का व्यसन है।

निष्ठावान साधक गहराई तक उतरता है। नकारात्मक कंपनों या व्यसनों को छोड़ने के लिए वह पूछता है, 'क्या लोग सचमुच मुझे दुःखी बना रहे हैं? या मैं उनके कंपनों को अपने कंधों पर इसलिए ले रहा हूँ क्योंकि यह मेरा व्यसन बन गया है? यदि मैं ही अपने दुःखों का कारण हूँ, तो मुझे ऐसा होने से रोकना चाहिए। मैं अपने व्यसनों को छोड़ना चाहता हूँ।'

अब आपके अंतर्मन में एक नई समझ का उदय होता है। जब आप इस स्थिति में पहुँच जाते हैं, जो भी आपको विचलित करता है, वह आपका शिक्षक बन जाता है। जो भी आपको दुःख, पीड़ा, गुस्सा या ईर्ष्या देता है, या आपके अहम् को बढ़ाता है, वह आपका शिक्षक बन जाता है। क्यों? क्योंकि वह आपको किसी ऐसे व्यसन की जानकारी दे रहा है जो आपमें कहीं दबा पड़ा था। यह छिपा व्यसन बाहर आ गया है। इसलिए आप कहते हैं, 'धन्यवाद। यह अच्छा ही हुआ कि आपने मेरे इस व्यसन के प्रति मुझे चेता दिया। अन्यथा मुझे इसका पता ही नहीं चलता।'

जब डाक्टर कहता है कि आपके शरीर में एक फोड़ा है, तो आप क्या करते हैं? क्या आप कहते हैं, 'कैसे बुरे आदमी हो तुम, जो मुझे इसकी जानकारी दे रहे हो?' नहीं! आप कहते हैं, 'मुझे इसकी जानकारी देने के लिए धन्यवाद। कृपया जाँच कीजिए।' आप डाक्टर से जाँच कराते हैं और इस काम के लिए उसका भुगतान भी करते हैं। इस तरह वह समय पर आपको एक शारीरिक बीमारी की सूचना दे देता है। अगर आपके शरीर में फोड़ा है, या आपके दांतों में दर्द है या आपको किसी विषाणु की छूत लग गई है, तो आप अपने आपसे नफरत नहीं करते हैं। आप कहते हैं, 'मुझमें कोई गड़बड़ी है या मैं किसी अस्वास्थ्यकर वस्तु के संपर्क में आ गया हूँ। इसीलिए मुझमें यह रोग प्रकट हुआ है। यह अधिक गंभीर रूप ले ले, इससे पहले इलाज करवा लेता हूँ।'



इसी तरह अगर आपमें कोई व्यसन है, तो आप अपने आपसे नफरत नहीं करते। जब आपको उसकी जानकारी मिलती है, तो आप अपनी आलोचना नहीं करते। यदि आप उसकी वजह से स्वयं को नीचा दिखाएँगे, तो आप उसके साथ एक हो जाएँगे। अगर आप अपने व्यसन के साथ एक हो गए, तो उसे स्वयं से अलग कैसे करेंगे? स्वयं को निकम्मा और निस्सहाय मानने से आप अपनी कमजोरी से दूर कैसे हो सकेंगे? आप अपनी कमजोरी से तभी दूर जा पाएँगे जब आप उसके अंग नहीं बन गए हैं।

इसलिए स्वयं को परम-आत्मा के रूप में देखिए, शुद्ध आत्मा के रूप में, हर दृष्टि से पूर्ण और शुद्ध। अंततः आपका ध्येय यही है कि आप जान सकें कि आप वास्तव में क्या हैं। आपकी दृष्टि सम्यक होनी चाहिए। यदि आत्मा अपनी प्रकृति से ही अशुद्ध है, तो आप स्वयं को मुक्त कैसे कर पाएँगे? यदि आत्मा शुरू से ही पापी है, तो वह निर्मल और सम्यक कैसे बन सकती है? शुद्ध और निष्कलंक होना आपका जन्मसिद्ध अधिकार है।

कुछ व्यसन गहरे रंगों के समान हो जाते हैं। वे आपकी आंतरिक दृष्टि को रंग देते हैं जिससे आप अपनी आत्मा पर ही शक करने लग जाते हैं। आप भूल जाते हैं कि आप भीतर से शुद्ध हैं, प्रकृति से दिव्य हैं। जिस तरह कपड़े पर चढ़े मैल को छुड़ाने के लिए किसी शक्तिशाली परिमार्जक का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार जो प्रभाव आपको अपनी दिव्यता की अनुभूति करने नहीं देते, उन्हें दूर करने के लिए आप ध्यान की तेजस्वी शक्ति का सहारा लेते हैं।

आपकी वास्तविक आत्मा स्थिर है, एक निर्मल पृष्ठभूमि है। आपके व्यसन इस पर एक रोगाणु की तरह प्रभाव करते हैं। इसी विचार से काम कीजिए। यद्यपि ये उतनी आसानी से आपका पीछा नहीं छोड़ेंगे क्योंकि दीर्घकाल से उनकी जड़ें जमी हैं, फिर भी यदि आप उनसे छुटकारा पाने के लिए दृढ़ हैं, तो वे टिक नहीं पाएँगे।

ऐसे भी कुछ वृक्ष हैं जो कई वर्षों के बाद भी बड़े नहीं होते। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनकी जड़ों को कभी बढ़ने नहीं दिया जाता और समय-समय पर काटकर छोटा रखा जाता है।

किसी भी जीवधारी को बढ़ने के लिए उसकी जड़ों को फैलने का स्थान मिलना चाहिए। किसी वस्तु को किसी विशेष हालात में रखने से क्या होता है, इस पर गौर करें। वह परिस्थिति उसके विकास को सीमित करती है। हमने लंबे समय से जिसे किया है या जिसे करते आ रहे हैं, वह हमारा स्वभाव बन जाता है। वह हमारे सोचने की प्रक्रिया से जुड़ जाता है। वह हमारी चेतना में ऐसा घर बना लेता है कि हम उससे नाता तोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। हम जानते हैं कि यह स्थिति अस्थायी है, फिर भी हम अपने मन को छलने देते हैं और सूक्ष्म रूपों में उससे चिपके रहते हैं। हम उस पीड़ा को भूल जाते हैं जो इसके कारण हो सकती है। इस तरह अपने ही जाल में फँसकर हम उन बौने वृक्षों के समान हो जाते हैं जो अपनी स्थिति के कारण बढ़ नहीं पाते। यदि हम इस जाल को नहीं तोड़ेंगे, तो हम बढ़ नहीं पाएँगे, फैल नहीं पाएँगे। और यदि हम बढ़ेंगे नहीं, फैलेंगे नहीं, तो अपना सच्चा आकार प्राप्त नहीं कर पाएँगे।

इस दूसरे चरण का उद्देश्य है - परिस्थितियों के बंधन तोड़कर अपने आपको मुक्त करना। आप मुक्त होना चाहते हैं क्योंकि आप बढ़ना चाहते हैं। आप बौनी मानसिकता में जीना नहीं चाहते। यदि आप बौने बने रहे, तो अनंत आकाश से स्वयं को वंचित कर देंगे। इसलिए आप निर्णय लेते हैं कि आप कौन सी परिस्थितियों से बंधे हुए हैं ताकि उन्हें तोड़ सकें। फिर आप उँचाइयों तक पहुँच जाएँगे तथा अपनी आत्मा के आनंद को प्राप्त कर लेंगे।

तीसरा चरण सहज है। यह त्यागने की प्रक्रिया है। आप अपने जीवन के सूखे पत्तों को झटक रहे हैं क्योंकि आप ताज़गी के लिए स्वयं को तैयार करना चाहते हैं। जब आप ऐसा करते हैं, तो क्या होता है? आप 'मैं' और 'हम' का अंतर पहचान लेते हैं। यह 'हम' भीड़ मनोवृत्ति का परिचायक है। जब आप 'हम' के साथ रहते हैं, तब आप दूसरों के जैसे बनने की कोशिश करते हैं। स्वयं को अपूर्ण मानते हैं और सोचते हैं, 'यदि मैं कुछ कहूँ, तो लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे? यदि वे मुझ पर हँस पड़े तो?' यदि आप दूसरों की धारणाओं के अनुरूप अपने आपको ढाल न सकें, तो आपको अटपटा लगता है और आप अपने आपको 'बेमेल' समझने लगते हैं।

स्वयं को इस गलती से बचाएँ। अपनी अद्वितीयता पहचानिए और कहिए, 'मैं हूँ मैं, मैं और कोई नहीं हो सकता। अन्य लोग मुझे स्वीकार करें या नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं वही हूँ जो मैं हूँ।' जब आप वैसे बन जाते हैं जैसे आप हैं, आपके जीवन में एक स्वाभाविक बदलाव शुरू हो जाता है। आप सभी के साथ निर्भयता और निस्संकोच रूप से संप्रेषण करने लग जाते हैं। मैं इसी को 'मैं' से 'हम' को अलग करना कहता हूँ।

जब 'मैं' में 'हम' घुल जाता है, तो 'मैं' एक विशाल महासागर में डूब जाता है। जब तक आप दूसरों से अपनी तुलना करना बंद नहीं करेंगे, अपने वास्तविक 'मैं' को कैसे पहचानेंगे? कितनी ही शैलियाँ, भाषाएँ, रीति-रिवाज हैं। क्या आप संसार भर में जितने 'हम' हैं, उन सबका अनुकरण करेंगे? आप कहीं-कहीं सफल भी हो जाएँ, लेकिन इतनी जगह कैसे सफल हो सकेंगे? ऐसा कब तक चलेगा? यदि सभी एक-दूसरे के जैसे बन जाएँगे तो मानवीय विविधता कहाँ रहेगी?

यह महसूस करना बेहतर है कि, 'मैं जहाँ भी जाऊँगा, अपने साथ जाऊँगा। मैं अपनी अद्वितीयता के साथ जाऊँगा। हर जगह मैं अपनी रोशनी, अपने रंग, और अपनी अभिरुचि की छाप छोड़ूँगा।' यह अपने 'मैं' को स्वीकार करने की प्रक्रिया है। यह 'मैं' अकेले आया है और अकेले ही हर जगह जाएगा; अंततः आपको स्वयं के साथ रहना अच्छा लगेगा। साथ ही, आप सभी के साथ संपर्क रखेंगे।

जब आप बाहरी खोलों को छोड़ देंगे, तब सृजनशील बन जाएँगे। इस प्रक्रिया के दौरान आप एक खोल को हटाते हैं, तो भीतर एक और खोल दिखाई देता है। तब आपको पता चलता है कि कुछ और हटाने के लिए बचा हुआ है। अंततः ऐसा भी समय आता है जब आपको हटाने के लिए कुछ नहीं मिलता। वही आप हैं। तब समझ जाइए कि आप अपने असली रूप तक पहुँच गए हैं।

जब आप स्वयं को पा लेंगे, तो आपको विदित हो जाएगा, 'यह आत्मा अटूट है। सत्त्व कभी नष्ट नहीं होता।' आप केवल उसी को तोड़ सकते हैं जो भंगुर है, जो टूट जाता है - यानी आपके व्यसन, निर्भरताएँ,

आपके बाहरी खोल। जब आपको अपना 'मैं' मिल जाएगा, तो आपको अपनी अनुपमता का भी एहसास हो जाएगा।

अपने 'मैं' को ढूँढ़ना स्वार्थ नहीं है, बल्कि अपनी आत्मा का आदर करना है। स्वयं को पाना अपने 'मैं' की अनुभूति एवं उसके प्रति आदर भाव है। अपने एकत्व में आप सब के प्रति एकत्व की अनुभूति को गहरा करेंगे। अब आप जानेंगे कि दूसरों को चोट पहुँचाने से आप स्वयं को ही चोट पहुँचा रहे हैं, और दूसरों की मदद करके आप स्वयं की मदद कर रहे हैं। अब आपको अपने अंतर में जो दिखाई देगा, उसे आप सभी जीवों में देखेंगे। जब 'मैं' की यह स्थिति प्रकट होती है, तो आपके लिए विसर्जन की स्थिति हो जाती है - सार्वभौमिक प्रेम और सभी जीवधारियों के प्रति सम्मान के महासागर में विसर्जन।

### चिंतन के बिंदु

निर्जरा वह मार्ग है जिससे मैं अपने उन हालातों, व्यसनों और आदतों को गिरा सकूँ, तोड़ या छोड़ सकूँ जो मुझे बाँधे हुए हैं। मैं अपने आपको बढ़ने के लिए जगह देना चाहता हूँ। मैं अपने आपको सीमित करने वाली आदतों से मुक्त करना चाहता हूँ ताकि मैं अपनी पूर्ण ऊँचाई प्राप्त कर सकूँ।

मैं क्या चाहता हूँ? क्यों चाहता हूँ? कितना चाहता हूँ? जो मुझे नहीं चाहिए, उसे अपने जीवन में आने नहीं दूँगा। मैं वही चाहता हूँ जो मुझे बढ़ने में मदद करे, जो मुझे अपने स्थायी सत्य की ओर ले जाए।

मैं हूँ मैं। मैं कोई और नहीं हो सकता। जहाँ भी जाऊँ, मैं अपने साथ जाता हूँ।

धार्मिक व्रत बाहरी दबाव की उपज हैं। अनुशासन भीतरी जागरूकता से आते हैं, अंतर्मुखी दृष्टि से आते हैं। वे नदी के किनारों के समान हैं। यदि मैं अपने दोनों ओर के किनारों को स्थिर रखूँगा, तो मैं अपनी ऊर्जा को जागरण और प्रेम के सागर के निरंतर प्रवाह में बहने के लिए मुक्त कर दूँगा।



हम मानव जीवन के मंच पर खड़े हैं। यहाँ से हमें किसी एक विकल्प को अपनाना है। या तो हम अभिज्ञता के साथ ऊपर उठ जाएँ, या आश्रित रहने की वजह से नीचे धँसते जाएँ। हमें इन दो दिशाओं में से एक की तरफ जाना है। यह हमारा अपना निर्णय होगा। कोई भी हमें मजबूर नहीं कर सकता कि हम इसे चुनें या उसे चुनें। कोई बाह्य शक्ति हमारी दिशा को निर्धारित नहीं कर सकती। हमें मानना होगा कि निर्णायक शक्ति हमारे अंतर में ही है।

जब हम इस सत्य को जान लेते हैं, हम बाह्य चीजों को टटोलना बंद कर देते हैं, अपने अंतर से कार्य करने में तत्पर हो जाते हैं। हम निश्चय करते हैं कि हमें क्या करना है। यदि हम अभिज्ञता के साथ आगे बढ़ते हैं, तो यह जीवन हमारे लिए मूल्यवान और अर्थपूर्ण हो जाता है। यदि हमारे अंदर यह आकांक्षा नहीं जगती, तो जीवन उबाऊ और अर्थहीन लगने लगता है।

हम भले ही इस शरीर को कितना भी पोषण दें, इसका क्षय होकर ही रहेगा। एक दिन इसे जाना ही है। यदि हम इस शरीर का उपयोग उच्चतर अभिज्ञता की ओर बढ़ने के लिए नहीं करेंगे, तो फिर क्षणिक सुख या अस्थायी संतोष की प्राप्ति के लिए ही उसका उपयोग होगा। जिसके पास आंतरिक खोज की ललक नहीं है, वह अधिकतम भोग विलास के लिए मनमाने तरीके से इसका उपयोग कर सकता है। लेकिन इसके लिए मानव शरीर की कोई आवश्यकता नहीं है। यौन संबंध के लिए, जी भरकर खाने के लिए, वस्तुओं का संग्रह करने के लिए, आलस्य, निष्क्रियता, भय, क्लेश में जीने के लिए शरीर मानव का हो या पशु का, कोई फर्क नहीं पड़ता।

पशु जगत् पर दृष्टिपात कीजिए। वे सब यही तो कर रहे हैं। एक साँड़ यौन प्रक्रिया में उतना ही आनंद लेता है जितना कि मनुष्य। एक भालू घंटों सोया पड़ा रहता है और कोई उसकी नींद में खलल नहीं डालता।

हाथी जितना खाता है, उसकी तुलना में मनुष्य की क्या बिसात? यदि आप चींटी के झुंड में झाँकें, तो वहाँ भोजन सामग्री का अंबार लगा हुआ नजर आएगा। वर्ष भर वे भोजन सामग्री इकट्ठा करती ही रहती हैं। मधुमक्खियों के बारे में सोचिए। वे भी अपना सारा जीवन संग्रह करने में बिता देती हैं। ऐसे मनुष्य भी हैं जो जीवन भर संग्रह ही करते हैं। वे उम्र भर धन-दौलत, संपत्ति, वस्तुएँ आदि बटोरते रहते हैं और अंत समय में इन सबको पीछे छोड़ जाते हैं। तथा उसके बाद कभी-कभी उनके बच्चे, जिन्हें यह सब दौलत विरासत में मिलती है, उन्हें बेवकूफ कहते हैं और उनकी गाढ़ी कमाई से अपनी विनाशकारी आदतों और व्यसनों को पालते हैं।

यदि आपको मानव जीवन महत्वपूर्ण लगता है, तो सतर्क रहिए। आपको जानना चाहिए कि यह जीवन एक महान उद्देश्य को साध सकता है। इस उद्देश्य को साधने के लिए मानव देह से बढ़कर कोई उपकरण नहीं है। आपको क्या दिशा लेनी है, इसके बारे में एकदम स्पष्ट रहिए। विचारों की यह स्पष्टता आपके मार्ग, आपकी मनःस्थिति, आपकी दिशा को तय करेगी। मानव जीवन के इस मंच से अवलोकन करेंगे, तो आप जान लेंगे कि आपको या तो ऊपर की ओर जाना है या नीचे की ओर। ये दोनों बिल्कुल ही विपरीत दिशाएँ हैं। इन्हें मिलाना नहीं चाहिए।

ऊपर की ओर बढ़ने के लिए अभिज्ञता की आवश्यकता है। नीचे की ओर जाने के लिए आसक्ति की आवश्यकता है। आसक्ति क्या है? वस्तुओं के साथ चिपके रहना। किसी ने कहा है कि आसक्ति में चार बातें हैं: जरा रोना, जरा आहें भरना, जरा झूठ बोलना और जरा मरना। आप रोते हैं क्योंकि आपको कोई वस्तु चाहिए। जब वह आपको नहीं मिलती, तो आप आहें भरते हैं। उसे पाने के लिए आपको थोड़ा झूठ बोलना पड़ता है। ऐसा करने से आप अंदर ही अंदर थोड़ा मुरझा जाते हैं। अपनी आत्मा से आप जरा परे चले जाते हैं, अलग हो जाते हैं। इसलिए जब आप अपने अंदर इन बातों को उभरते देखें, तो कहिए, 'हे भगवान! मैं क्यों रो रहा हूँ? इसी आसक्ति के कारण!'

यहाँ पहुँचकर जरा असमंजस पैदा होता है। कई लोग पूछते हैं, 'हम जीवन से पलायन क्यों करें? क्या हमें सुख नहीं भोगना चाहिए? क्या हमें

मित्रों की संगत का मज़ा नहीं लेना चाहिए? क्या कोई अच्छी गाड़ी या घर रखना गलत बात है?’ ज्ञान आपसे यह नहीं कहता कि जीवन का मज़ा न लें। इसके विपरीत वह यही कहता है कि जीवन का आनंद लीजिए। केवल वह आपके रोने, आहें भरने, झूठ बोलने और मरने का विरोध करता है!

दरअसल, आप किसी भी वस्तु का मज़ा तभी ले सकते हैं जब आप उससे चिपके नहीं हैं, उससे बंधे नहीं हैं। जब आप निर्भरता के बोझ से झुके हुए नहीं हैं, तब आप वस्तुओं को उनके वास्तविक स्वरूप में देख सकते हैं। यहाँ जो भी वस्तु है, वह केवल उतने समय तक रहेगी जैसी उसकी प्रकृति है। इसलिए उसका मज़ा लीजिए, और जब उसे जाना है, जाने दीजिए। यही उसकी प्रकृति है - चले जाने की।

जब आप किसी फूल बेचने वाले के पास जाते हैं, क्या आप उसके साथ समझौता करते हैं? क्या आप उससे कीमत चुकाने के बदले में कहते हैं कि वह वादा करे कि फूल इतने दिनों तक ताज़े बने रहेंगे? नहीं, आप केवल सर्वोत्कृष्ट फूल चुनते हैं और वे तब तक ताज़े बने रहते हैं जितना उनके लिए स्वाभाविक है। बस इतना ही। जब वे मुरझा जाते हैं, तब आप क्या करते हैं? क्या आप रोते हैं? या आप यह सोचकर अपने मन को समझा लेते हैं कि, ‘तीन दिनों तक इन्होंने कमरे को सुंदर बनाया और आल्हाद देने वाली सुगंध प्रदान की।’

प्रबुद्ध व्यक्ति यही तरीका अपनाते हैं। वस्तुएँ जैसी हैं, उन्हें वैसे ही देखने की। आप जानते हैं कि फूल मुरझा जाते हैं। इसके साथ-साथ आप फूलों के सौंदर्य और सुरभि को भी जानते हैं। आप दोनों को जानते हैं। अब आप दुःखी नहीं होते और खुशी के क्षणों का आनंद भी ले लेते हैं। यह सत्य जानते हुए कि फूल तो मुरझाएँगे ही, आप रोते हुए यह नहीं कहते, ‘तीन दिनों बाद क्या होगा?’ जब भी आप फूलों को देखते हैं, आनंदित हो उठते हैं। आप जानते हैं कि उनकी जीवंत उपस्थिति सभी को आनंदित करती है, भले ही वे आपके मित्र हों या पूर्ण अजनबी। इसलिए जब फूल ताज़े हैं, तब आप उनके मुरझाने की प्रकृति पर ध्यान नहीं देते, यद्यपि अपनी दुहरी अभिज्ञता में आप जानते हैं कि वे मुरझा जाएँगे।

इस दसवीं भावना में साधक लोक का स्वरूप समझता है - इस लोक का, जिसमें हम सब विचरण कर रहे हैं। इस लोक में हम सब चिरकालिक भी हैं और क्षणिक भी। दो अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। सत्त्व के दृष्टिकोण से हम चिरकालिक हैं, आकार के दृष्टिकोण से क्षणिक हैं।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, हम दुहरी अभिज्ञता से दो गुणों को देखते हैं: द्रव्य या पदार्थ, और पर्याय या परिवर्तन। द्रव्य सत्त्व है और उसका स्वभाव है चिरकालिक रहना। पर्याय आकार है जो द्रव्य के चारों ओर घूमता है, यह स्वभाव से क्षणिक है। हम एक ही क्षण में सत्त्व और आकार दोनों को देखते हैं। फूलों का पल्लवित होना और उनका मुरझाना, हम दोनों की अनुभूति एक साथ करते हैं।

यह गहन अभिज्ञता जो साधना से आती है, आपको वर्तमान में जीने देती है, कल की चिंताओं से दूर। किसी ज्योतिषी के पास भागकर उससे अपनी आयु के बारे में पूछने से क्या मिलेगा? यदि कोई कहे कि आप अस्सी वर्ष जीने वाले हैं, तो आप क्या करेंगे? शायद आप कहेंगे, 'खैर, मुझे तो अभी बहुत समय जीना है।' पर इससे क्या आप खुश होंगे? यदि ये अस्सी वर्ष बीमारी में, अस्पताल में, विकृत सोच में या बिस्तर पर पड़े-पड़े बीतेंगे, तो? एवं यदि कोई कहे कि आप केवल एक वर्ष और जिएँगे, तो? आप बौखलाकर कहेंगे, 'एक वर्ष बाद मैं चला जाऊँगा। क्या करूँ?'

आप शायद जान जाएँगे कि कितने वर्ष जीवित रहेंगे, पर क्या आप जानते हैं कि जीना कैसे चाहिए? जो थोड़े से वर्ष बचे हैं, उनमें हमें क्या करना है? क्या हम यहाँ निष्क्रिय पड़े रहने के लिए हैं? यदि हमें जीने की कला आती है, तो एक वर्ष का जीवन भी सौ वर्ष की निष्क्रियता से बेहतर है। हम कितने वर्ष जीते हैं, इससे हमें खुशी नहीं मिलती। खुशी की गिनती सालों में नहीं होती, वह क्षणों में गिनी जाती है।

क्या हम वर्तमान के इस क्षण में जीना सीख सकते हैं और अपने द्रव्य, अपने सत्त्व से संपर्क साध सकते हैं? हम हमेशा भविष्य के बारे में ही सोचते हैं। भविष्य की चिंता करते रहते हैं। हम वर्तमान में नहीं जीते हैं। यही हमारी समस्या है।



एक सज्जन थे, जो सेवानिवृत्त हो चुके थे। वे एक बड़े इस्पात कारखाने के अध्यक्ष रह चुके थे, करोड़पति थे। उन्हें पैसे की कमी की चिंता नहीं थी, पर वह डॉलर के अवमूल्यन को लेकर चिंतित रहते थे। मैंने उनसे पूछा, 'क्या बात है? क्या आपके पास पैसा नहीं है?' उन्होंने जवाब दिया, 'वह तो मेरे पास बहुत है, पर यदि डॉलर इसी तरह गिरता रहा, तो मेरा क्या होगा?' इस तरह का मन पूरी तरह से विरूपित है। उनकी चिंता इतनी बड़ी है कि पास में जो करोड़ों रुपये हैं, वे उन्हें कुछ भी नहीं लगते। यह व्यक्ति अपने ही भय से भयभीत है।

असल में आपने जो भय पैदा कर लिया है, उसके अलावा दूसरा कोई भय नहीं है। एक बार भय मन में घर कर जाता है, तो वह आपको हजारों दिशाओं में ले जाएगा। ये विकृत मानसिक सृष्टियाँ, जिन्हें हम काला जादू कहते हैं, और कुछ नहीं हैं बल्कि डर की पैदाइशें हैं। जब हमें डर लगता है, तो ऐसे लोग होते हैं जो जानते हैं कि इस स्थिति का लाभ उठाकर वे हमें कैसे ठगें।

इसीलिए महावीर ने नवदीक्षितों से प्रत्यक्ष कहा, 'आप डर से प्रेरित होकर जो कुछ भी करते हैं, वह अर्थहीन है। आपको उस स्थिति में पहुँचना है जिसमें आप संपूर्ण संसार को उसकी वास्तविकता में देख सकें। तब आप जो भी करेंगे, निर्भयता से करेंगे।' जब आप भय की छाया तले न होंगे, तब आप पल-पल का आनंद ले सकेंगे। जो व्यक्ति भय के तले जी रहा है, वह जीवन का आनंद नहीं ले पाएगा। उदाहरण के लिए, एक कैदी को बताया जाता है, 'कल तुम्हें फाँसी मिलेगी, इसलिए आज जितना चाहे खा लो, और जहाँ जाना चाहो, चले जाओ।' क्या वह भोजन का मज़ा ले पाएगा? वह तो कल की कल्पना से ही काँप जाएगा।

इसी तरह भय आपको आध्यात्मिक बनने नहीं देता है। भय के मारे भगवान को याद करना भी एक तरह का रिश्वत मात्र है; आध्यात्मिकता नहीं। आध्यात्मिकता हमेशा अभिज्ञ होती है; आप जो भी करें, अभिज्ञता से करें।

भय से परे कैसे जाएँ? इसका एकमात्र उपाय है कि आप जानें कि संसार क्या है, यह जानें कि आप क्या हैं, संसार के साथ आपका क्या

रिश्ता है? आप यहाँ किसलिए हैं? जब आप अपनी असली प्रकृति को जान जाएँगे, तब आप यह भी जान जाएँगे कि आप यहाँ किस लिए हैं। जब आप अपने सत्व और अपनी क्षणभंगुर प्रकृति में अंतर करना सीख जाएँगे, तब आप डर पर विजय पा लेंगे।

इस भावना में दो चिंतन हैं: लोक और अलोक। यह ब्रह्मांड, यह तारामंडल, यह विश्व लोक है। इसके तत्त्वों को जानकर आप उसे जान जाते हैं जो पहले अज्ञात था। अज्ञात को जानकर आप अज्ञात के भय से मुक्त हो जाएँगे। आप इस ब्रह्मांड में सहजता से विचरण कर सकेंगे और अपने ध्येय की ओर निर्भयता और विश्वास के साथ बढ़ सकेंगे।

लोक छह घटकों से बना है: जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव आत्मा है, अजीव पुद्गल है, धर्म यानी गति का नियम, अधर्म यानी स्थिति का नियम, आकाश यानी स्थान, और काल यानी समय। आकाश वह पात्र है जिसमें सब कुछ समाया हुआ है। उसमें क्या समाया हुआ है? आकार। आकार क्या है? वह एक और पात्र है। जैसे पिंजड़े के अंदर चिड़िया है, वैसे आकार के अंदर विद्यमान है जीव, यानी चेतन ऊर्जा।

लोक वह स्थान है जहाँ दो नियम क्रियाशील हैं, गति और स्थिति। इन दो नियमों के प्रभाव के कारण दो ऊर्जाएँ, यानी जीव और अजीव, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते-आते रहते हैं, गति और स्थिति के मध्य झूलते हुए। इन दो नियमों की क्रिया के फलस्वरूप लोक वह स्थान है जहाँ पुद्गल के परमाणु बनते-बिगड़ते रहते हैं। पुद्गल निरंतर बनता और नष्ट होता रहता है। चूँकि यह प्रक्रिया क्रम से होती है, इसलिए समय का अवलोकन संभव है। आत्मा भी, यदि हम सापेक्ष रूप से कहें, तो पिंजड़े में से बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है। जो परिस्थितियाँ और आकार आत्मा को घेरे हुए हैं - शारीरिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक - उनके परिप्रेक्ष्य में आत्मा की यात्रा को समय में मापा जा सकता है। यदि आकार न हो, तो आत्मा अपने असीम स्वभाव में रहेगी। तब उसकी सर्वोच्च ऊँचाई से देखने पर समय का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

लोक का विलोम है अलोक। हम उसे शून्य कह सकते हैं, क्योंकि वहाँ किसी का अस्तित्व नहीं है; अलोक केवल अस्तित्वहीन है, जीवन से शून्य।

लोक और अलोक के बीच की सीमा रेखा पर प्रबुद्ध जीव अपना अंतिम विश्राम स्थल पाते हैं, अपनी चेतना की पराकाष्ठा। इस बिंदु तक पहुँचने के पहले जीव एक प्रक्रिया में, एक यात्रा में रहते हैं, कुछ सीमाओं से बंधे हुए। मोक्ष मुक्ति है, अनंतता है। जब आत्मा अपने सभी कर्मों का त्याग कर देती है, अपने घेरे हुए प्रत्येक पुद्गल के प्रत्येक कण को गिरा देती है, वह निर्विघ्न शांति पा लेती है। कोई संघर्ष नहीं, कोई गति नहीं, कोई यात्रा नहीं, कोई आवश्यकता नहीं। कहीं जाने की कोई इच्छा नहीं, क्योंकि आत्मा ऐसी स्थिति में पहुँच गई है जहाँ वह संपूर्णता में जीवन का अनुभव कर रही है, वह इच्छारहित हो गई है, यानी वह संतुष्ट हो गई है। जीव यहाँ अपनी प्रकृति के अनुसार निवास करता है और शांति, आनंद, असीम प्रेम और संपूर्ण ज्ञान जैसे अपने गुणों को चारों ओर बिखेरता है।

जो जीव इस सीमांत प्रदेश में पहुँच जाते हैं, वे सिद्ध बन जाते हैं। सिद्ध यानी पूर्ण आत्माएँ। जिन्होंने अपने आप को सभी प्रकार की सीमाओं और अंदरूनी कमजोरियों से मुक्त कर लिया है, वे यहाँ विश्राम करने आते हैं। सभी धर्मों से, सभी संस्कृतियों से, सभी कालों से, वे इस जगह की ओर उत्थान करते हैं जहाँ कोई द्वैत नहीं है, केवल एकता है। आत्मा की खोज के इस अंतिम पड़ाव को ही मोक्ष कहते हैं।

जब हम लोक को अलग दृष्टिकोण से देखते हैं, तो दो पहलू नजर आते हैं: बाह्य लोक एवं आंतरिक लोक। बाह्य लोक तथ्यों का लोक है। वह सतत परिवर्तनशील है। वह जो आकार ग्रहण करता है, वे नित्य परिवर्तित भौतिक तत्त्वों की संरचनाएँ हैं। आंतरिक लोक कल्पानाओं का लोक है। वह विचारों और भावनाओं से निर्मित है।

पहले बाह्य विश्व के स्वरूप को जानें। बहुमूर्तिदर्शी के टुकड़ों के समान वह और कुछ नहीं, पुद्गल के अनंत आकारों के अदल-बदल और जुड़ने से निर्मित भिन्न-भिन्न रचनाएँ हैं। इसके प्रमुख घटक हैं पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। ये घटक परस्पर जुड़ते हैं, फिर अलग हो जाते हैं, फिर

दुबारा जुड़ जाते हैं। इन भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के कारण बाह्य रूप भी निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं।

महावीर ने एक बहुत ही अर्थपूर्ण शब्द का प्रयोग किया - पुद्गल। पुद् अर्थात् भरना और गल अर्थात् गलना। हमारा शरीर हर पल भर भी रहा है और गल भी रहा है। पुरानी कोशिकाएँ नष्ट हो रही हैं और उनका स्थान नवीन कोशिकाएँ ले रही हैं। कोशिकाओं का यह बनना-बिगड़ना निरंतर जारी रहता है। यह प्रक्रिया दिन में चौबीसों घंटे चलती रहती है, तब भी जब हम निद्रामग्न रहते हैं।

जब हम अपने शरीर के पौद्गलिक स्वरूप को जान जाते हैं, तब हमें अभिज्ञता मिलती है कि उसकी देखभाल कैसे करनी है। हम उसे भरने से पहले ठीक प्रकार से खाली करना सीख जाते हैं। योगासनों के अभ्यास से शरीर के विषैले तत्वों को नष्ट करते हैं। हम जोर लगाकर उच्छ्वसन करते हैं ताकि शरीर से सारा कार्बन डाइऑक्साइड बाहर आ जाए। शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रखने के लिए हमें जानना चाहिए कि मलोत्सर्जन कैसे करें। तब हम शरीर को भोजन और जल के पोषक तत्वों से एवं ताज़ी हवा से भरने के लिए तैयार हो जाते हैं।

अब हम शरीर को एक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। हम उसकी जड़ ऊर्जा की प्रकृति को समझने लगते हैं। वह जीव से भिन्न है जो चेतन ऊर्जा है। शरीर से पहचान स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे सराहने या उसकी निंदा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बस, उसे उसकी वास्तविकता में देखने की आवश्यकता है।

पुद्गल की प्रक्रिया हमारे आंतरिक लोक पर भी उतनी ही लागू होती है। जिस तरह हमारी कोशिकाएँ निरंतर बदलती रहती हैं, उसी तरह हमारे विचार और भावनाएँ भी निरंतर बदलते रहते हैं। विचार और भावनाएँ पुद्गल के सूक्ष्म रूप हैं। वे आंतरिक लोक के घटक हैं। विचार हमारे अंतर्मन की ईंटें हैं; भावना वह पलस्तर है जो इन ईंटों को जोड़ती है।

आप इस प्रक्रिया से ऊपर उठकर देख सकते हैं कि आपने अपने अंतर्मन में जो आकार निर्मित किए हैं, उनका निकासन, क्षय या रूपांतरण

संभव है। इसे समझने से अब आप स्वयं के या दूसरों के बारे में अपने जो अभिमत हैं, उनसे चिपके नहीं रहते हैं। आप एक क्षण पहले जैसे थे, एक वर्ष पहले जैसे थे, चेतना के एक जीवनकाल पहले जैसे थे, वैसे इस समय नहीं हैं। विगत का कड़वापन एक पल में घुल सकता है। जिसे आप पहले एक तरह से जानते हैं, वह आज बिलकुल अलग तरह का हो जाता है।

ऐसे उदाहरण भी हैं जब लोग अपने आत्म स्वरूप की एक झलक पाकर अपने आंतरिक संसार के संपूर्ण ढाँचे को ही बदल डालते हैं। कुछ ही क्षणों में वे अपने जीवन को एक नया रूप दे देते हैं। यह कैसे संभव है? आत्मा में असीम शक्ति है। उसका तेज लेसर पुंज से भी तीक्ष्ण है। ध्यान में आत्मा की इस रोशनी को एक विशिष्ट आंतरिक संरचना पर केंद्रित करने पर एक चमत्कार घटित हो जाता है। अंतर्दृष्टि से एक पल में सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं। अपनी चेतना को किसी भी अवांछित तत्त्व पर केंद्रित करने का भी ऐसा ही नतीजा है। वह अवांछित तत्त्व सदा के लिए नष्ट हो जाता है, जीवन भर का बोझ हट जाता है।

आप पूछ सकते हैं कि हम विचारों और भावनाओं को सूक्ष्म पुद्गल क्यों कह रहे हैं। आत्मा या चेतन ऊर्जा का स्वभाव है अपनी अभिज्ञता की ओर निरंतर प्रवाह में बहना - प्रेम और सत्य की अमर आनंदमयी ऊर्जा के रूप में। वह सर्वव्यापी चेतना की अनुभूति करने और सिद्धों की संगत पाने के लिए आतुर रहती है।

लेकिन अनादिकाल से ही यह आत्मा पुद्गल के साथ बंधी हुई है। उसका प्रवाह चारों ओर विद्यमान कुछ कणों के कारण अवरुद्ध है, जो उसे आवृत किए हुए हैं। पुद्गल के इन कणों को अजीव कहा जाता है, यानी निर्जीव ऊर्जा। आत्मा अपने आपको इन बंधनों में अवरुद्ध पाती है। जब आत्मा बाहरी विश्व को इंद्रियों के माध्यम से और भीतरी विश्व को मन से देखती है, तो वह निरंतर पुद्गल के इन कणों से प्रभावित और अनुबंधित होती रहती है। वह पुद्गलाधीन दशा में है, ऐसा कहा जा सकता है, और वह कर्म के अतिरिक्त कंपनों को या कणों को अपनी ओर आकर्षित करती है। कर्म के ये कण ही हमारी भावनाएँ और विचार-धाराएँ बन जाती हैं।

इस तरह आपका आंतरिक संसार पूर्वाग्रह, माँग, प्रत्याशा और प्रेषण का जटिल जाल बन जाता है। ये और कुछ नहीं, जड़ीभूत कंपनों के संग्रह हैं जो विचारात्मक और भावनात्मक खंडों में बदल गए हैं। इनकी उपस्थिति से आपकी निर्मल, चेतन ऊर्जा का बहाव अवरुद्ध हो जाता है। यदि आप इस प्रक्रिया को बिना रोके अपने आपको आकर्षित या विकर्षित होने देते हैं, क्रिया या प्रतिक्रिया करने देते हैं, तो आपकी आत्मा पुद्गल के अनेक परतों में घिर जाएगी। ये बख्तरबंद के समान हैं, जो आत्मा के प्रत्यक्ष अनुभव से आपको दूर रखते हैं।

जब आप अपने शुद्ध निराकार स्वभाव को जानकर पुद्गल के साथ अपनी पहचान बनाना बंद कर देते हैं, चाहे वह तादात्म्य शारीरिक हो, मानसिक हो या भावनात्मक, तब आप पुद्गलों को आकर्षित करना बंद कर देते हैं। लेकिन यदि आप इधर से उधर बहते रहे, यदि आप अस्थिर रहे, तो आप अपनी आत्मा पर लदे पुद्गलों के बोझ को उतार नहीं सकेंगे, तथा आत्मा की स्थिर, कांतिमयी, स्फुरणहीन ज्योति बाहर नहीं आएगी।

जब हमें लोक के निर्माण का ज्ञान मिल जाता है, तब हमें अनुभूति मिलती है कि छह तत्त्वों में से मात्र एक ही चेतन है - वह है जीव। समय कुछ भी नहीं जानता। आकाश कुछ भी नहीं जानता। पुद्गल चेतना-शून्य है। गति और स्थिति के नियम कुछ नहीं जानते। ये सभी जड़ हैं। चेतना सिर्फ आत्मा का गुण है। हमारी आत्मा सब कुछ जानती है। जब हम यह जान जाते हैं, हम दुविधा में नहीं रहते। हम अपने आंतरिक संसार पर ध्यान केंद्रित करते हैं जहाँ जीवन की सभी गुत्थियों का समाधान है।

सभी के अंदर एक आंतरिक लोक है। अपने लोक को देखकर पूछें, 'मैं किस पर निर्भर रहूँ? मैं सतत परिवर्तनशील पर कैसे निर्भर रहूँ? वस्तुओं से चिपके रहने की यह इच्छा क्या है? क्या यह अज्ञान नहीं है? क्या मैं बार-बार मानसिक दीवारों, मतों, अवधारणाओं और प्रत्याशाओं से टकरा नहीं रहा हूँ, जबकि मुझे अपने लोक में उन्मुक्त विचरण करना चाहिए? मैं उसे कैसे पकड़कर रखूँ जो गतिमान है?'

कोई व्यक्ति रेलगाड़ी के पीछे खड़ा होकर अपने पैरों को ज़मीन के साथ बाँधकर दोनों हाथों से रेलगाड़ी को रोकने की कोशिश कर सकता है।

वह अपनी पूरी ताकत लगाकर ऐसी कोशिश कर सकता है। यदि वह ऐसा करे, तो क्या होगा? वह दो टुकड़ों में चिर जाएगा। इसी तरह, आप भी अंदर से चिर जाएँगे। आप चिपके हैं वस्तुओं से, छायाओं से, क्षणभंगुर तत्त्वों से, जबकि जीवन आगे बढ़ रहा है। आप अपने आपको एक बक्से में बंद करके कह रहे हैं, 'नहीं, मैं चाहता हूँ कि यह बक्सा यहीं रहे। इसे हिलना नहीं चाहिए। मैं चाहता हूँ कि यह चिरस्थायी रहे।'

आप गलत बात पर ध्यान दे रहे हैं। आप अस्थायी को चिरस्थायी बनाने की कोशिश कर रहे हैं, आप समझ नहीं रहे हैं कि मात्र स्थायी ही चिरस्थायी हो सकता है। आपको भय है कि वह चला जाएगा। यदि आप इस भय से इन्कार भी करें, आप बदलाव को कैसे रोक सकते हैं? दुनिया में ऐसा कोई उपकरण नहीं है जो बदलाव को रोक सके। यही मुख्य बात है।

जैसे ही आप किसी व्यक्ति या वस्तु को बदलने से रोकते हैं, आप उसकी प्रकृति को नष्ट कर देते हैं। आप उसके जीवन-प्रवाह को अवरुद्ध कर देते हैं। और जब आपने उसकी प्रकृति को नष्ट कर दिया, तब वह आपको अच्छा भी नहीं लगता है। क्यों? क्योंकि वह अब प्राकृतिक नहीं रहा, वह स्वाभाविक नहीं रहा। भीतरी जीवन चला गया है, केवल आकार रह गया है जो मुरझाने लगा है। एक शव के समान वह सड़ रहा है और भयंकर दुर्गंध छोड़ रहा है। और जब आप किसी के जीवन-प्रवाह को बहने नहीं देते, सबसे पहले किसका जीवन-प्रवाह बहना बंद हो जाता है? स्वयं आपका।

इसलिए आपको एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर उछलना बंद करना होगा। आपको ध्यान केंद्रित करना होगा। किस पर? अपने आंतरिक लोक को सीमित करने वाली संरचनाओं पर। अपने व्यसनों पर, उनके स्रोतों पर, परिवर्तन के भय पर। अपने आप से पूछें, 'मैं अपने भय को, अपनी चिंता को कैसे रोक सकता हूँ? मैं दूसरों से अपनी इच्छानुसार काम कराने की अपेक्षा रखना कैसे बंद कर सकता हूँ? मैं यह अपेक्षा रखना कैसे बंद कर सकता हूँ कि वादे पूरे किए जाएँ?'

यदि आप सचमुच अभिज्ञ हैं, तो आप जानते हैं कि कोई भी आपको कुछ दे नहीं सकता। प्रत्येक क्षण परिवर्तन में रहा है - परिस्थितियों में, भावनाओं में, शरीर के रसायनों में। साधक को क्षण के

प्रति ग्रहणशील होना है और अपने आपसे कहना है, 'यही वह क्षण है!' अपने आपको क्षण के प्रति समर्पित कर दें, ताकि जब परिस्थितियाँ बदले और कोई अपना वादा नहीं निभाए, तो आप क्षण के सत्त्व को अपने पास रख सकें, न कि उसके ग्रहण किए गए रूप को। किसी वादे पर निर्भर होना दुःख को न्योता देना है, क्योंकि यदि वह अच्छे इरादे से दिया भी गया हो, वह समय के परिवर्तन के साथ अपनी जीवंतता खो देता है।

इसलिए क्षण को छोड़ दीजिए और उसके सत्त्व का स्मरण कीजिए। अनुभूति कीजिए, 'किसी चीज़ या व्यक्ति से चिपके रहने की प्रवृत्ति मेरा अज्ञान है।' अपने मन के अज्ञान को स्वीकार करना आसान नहीं है। यदि कोई कहे कि आपको कुछ नहीं आता है, तो आपको गुस्सा ज़रूर आएगा। 'आप क्या समझते हैं, मैं मूर्ख हूँ?' आप झल्ला पड़ते हैं। आप सच्चाई सुनना नहीं चाहते।

व्यसन आपको क्रोधित, कटु, परेशान और नाराज़ बना देते हैं। होता यह है कि आप जिस व्यक्ति के साथ चिपके हुए रहते हैं, उसे अपने से दूर कर देते हैं। जब वह चला जाता है, तो आप कटु हो जाते हैं। कटुता क्यों ढोएँ? क्यों रूठें? कुछ लोग कहते हैं कि क्रोध को व्यक्त करके उसका खुलासा करो। मगर, मैं कहता हूँ, उसका वमन कर दो; फेंक दो! जिस व्यक्ति के लिए आप तड़प रहे हैं, वह तो चला गया; उसे अपने मन में रखने का क्या मतलब है?

यह सब भीतरी समझ से ही किया जा सकता है। अपने आपसे कहें, 'मैं इस अप्रिय भाव के साथ चिपके नहीं रहना चाहता; यह मेरे पूरे दिन को बरबाद कर देगा, और मैं जानता हूँ कि यह दिन दुबारा आने वाला नहीं है।' हमारे जीवन का जो भी अमूल्य दिन बीत जाता है, उसे किसी भी प्रकार से वापस नहीं लाया जा सकता। दुनियां में ऐसी कोई मुद्रा नहीं है जिससे आप बीते दिन को खरीद सकते हैं। इसलिए यदि आप दिन खरीद नहीं सकते, तो उसे बिगाड़े क्यों? यह प्रमुख अभिज्ञता हमारे संपूर्ण अंतःकरण में व्याप्त हो जानी चाहिए। यह अंदर पैठ जानी चाहिए।

तब क्रोध की अग्नि में आप अपने दिन को व्यर्थ नहीं जाने देंगे। आप चाहे कितने भी नाराज़ हों, चलती गाड़ी से अपने दस हजार रुपये की



अँगूठी को बाहर नहीं फेंकते हैं। आप उसका मूल्य जानते हैं, इसलिए उसकी सुरक्षा करते हैं। इसी तरह जब आप अपने जीवन का मूल्य जान जाते हैं, तब किसी भी कीमत पर, किसी भी प्रेमी के लिए, किसी भी बॉस के लिए, या किसी भी व्यवसाय के लिए, या जीवन में आने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए अपने दिन को बरबाद नहीं करेंगे। वह दुनिया की हर वस्तु से अधिक मूल्यवान है। वह वापस आने वाला नहीं है।

इसे कहते हैं आंतरिक लोक का अवलोकन। आप उस प्रत्येक परिस्थिति की ओर ध्यान देने लगते हैं जो आपको विचलित कर रही है। आप उस परिस्थिति को अपनी आंतरिक दृष्टि के समक्ष लाकर पूछते हैं, 'यह परिस्थिति मुझे दुःखी क्यों कर रही है? यह आदत मेरा दिन क्यों बिगाड़ रही है?' जैसे-जैसे आप जानने लगते हैं कि कौन सी परिस्थितियाँ आपके मन में असंतुलन पैदा करती हैं, तब आप दुहरी अभिज्ञता से इस प्रक्रिया को देखते हैं।

अतः आप देखते हैं कि आप विचलित हो गए हैं। यह प्रथम अभिज्ञता है। आप स्वयं को विचलित होते हुए देखते हैं। यह दूसरी अभिज्ञता है। इस तरह आप निरीक्षक भी हैं और निरीक्षित वस्तु भी। आप रोगी भी हैं और वैद्य भी। आप रोगी हैं क्योंकि आपको गुस्सा आ रहा है। आप चिकित्सक हैं क्योंकि आप अपना इलाज कर रहे हैं। आपका मन रोगी है; आपकी आत्मा चिकित्सक है।

दुहरी अभिज्ञता से देखते हुए आप हर परिस्थिति को एक प्रयोग के रूप में लेते हैं। आप स्वयं से कहते हैं, 'यह मेरी प्रयोगशाला है। अब मैं पता लगाने जा रहा हूँ कि यह रोग क्यों आया है।' हर परिस्थिति आपको कुछ और सीखने का अवसर देती है और पुद्गल की अतिरिक्त परतों को हटाने का अवसर देती है - ये जड़ीभूत मानसिक या भावनात्मक खंड हैं।

जब हम सीमित दृष्टि के दायरे में रहते हैं, हम एक बहुत छोटे आंतरिक लोक में जीते हैं। हम बाह्य लोक को भी इन सीमाओं से रंग देते हैं और उसे एक बाधा के रूप में देखने लगते हैं। जब हम इन आंतरिक सीमाओं को तोड़ देते हैं, तब हमारी अभिज्ञता के साथ हमारा लोक प्रशस्त होने लगता है। हम लोक में झूमते हुए भ्रमण करते हैं और संपर्क में आने वाले हर हाथ

से हाथ मिलाते हुए बढ़ते चले जाते हैं। हम जहाँ भी हों, चेतन जीवों के साथ संप्रेषण करते और बाँटते हुए, गति, स्थिति, आकाश, काल और पुद्गल से बने इस लोक को एक निमित्त के रूप में देखते हैं जिसके द्वारा हम जीवन का सम्मान कर सकें, अपनी आंतरिक शक्ति को प्रकट कर सकें।

आप जीव हैं, एक असीम, अनंत आत्मा! ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे हथियाना चाहिए, जिससे आपको प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए। अपने संसार को जानिए और उसका उपयोग कीजिए! मानव जीवन के इस मंच से आप अपनी वर्तमान स्थिति को देख सकते हैं। अपने आंतरिक लोक में एकत्रित अवरोधों और आकारों के स्वरूप को जानकर, उनके कारण को पहचानकर उन्हें अपने पथ से निकाल दीजिए! अपने हृदय और मन की खिड़कियाँ खोलिए और अपने भीतर के विशाल आकाश की अनुभूति कीजिए! इस पर ध्यान केंद्रित कीजिए: 'मैं एक सजीव, चेतन ऊर्जा हूँ। मुझे भय, लोभ, आसक्ति, क्रोध और अज्ञान की भीतरी दीवारों को पिघलने देना चाहिए। मैं अपने आपको सभी आकारों से मुक्त करना चाहता हूँ और उनसे परे जीना चाहता हूँ।'

### चिंतन के बिंदु

लोक छह घटकों से बना है: जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन छह तत्त्वों में से केवल जीव चेतन है। मुझे उस सोपान पर पहुँचना है जहाँ मुझे इन अज्ञात तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होगा। तब मैं जो कुछ भी करूँगा, वह निर्भयता से करूँगा।

अंतर्दृष्टि की एक चमक जीवन भर के बोझ को हटा सकती है।

जब मुझे जीवन की कीमत मालूम हो जाएगी, मैं किसी भी मूल्य पर अपने दिन को बरबाद नहीं होने दूँगा।

खुशी सालों में नहीं गिनी जाती; क्षणों में गिनी जाती है।

आत्मा चिकित्सक है; मन रोगी है। दुहरी अभिज्ञता से मैं अपने मन का इलाज कर सकता हूँ और स्वयं को पूर्ण बना सकता हूँ।



मन एक सीढ़ी है। यदि हम अभिज्ञ हैं, वह हमें ऊपर की ओर ले जा सकती है। यदि हम अनभिज्ञ हैं, तो वह हमें गिरा सकती है। इस सीढ़ी में ये दोनों ही संभावनाएँ हैं - सहायक बनने की या अवरोध करने की। अभिज्ञता की अवस्था में, हमारा मन एक सुंदर उपकरण है। वह सत्य को प्राप्त करके उसे प्रेषित कर सकता है। वह हमें प्रेरित करके ऊँचा उठा सकता है। किंतु अपनी अपरिष्कृत, अनभिज्ञ अवस्था में, वह हमारे विरुद्ध काम करता है। वह हमें छलकर विश्वास दिला सकता है कि जो हम चाहते हैं, वही सही है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। हम उसकी आड़ में स्वयं को भ्रमित करते हैं कि हम जो कर रहे हैं, वह गलत नहीं है, भले वह गलत ही हो।

जब कोई व्यक्ति मात्र अपनी बुद्धि पर निर्भर रहता है, वह नहीं जान पाता कि वह उठ रहा है या गिर रहा है। वह बता नहीं पाता क्योंकि वह बुद्धि के पूर्वाग्रहों से ऊपर नहीं उठता। केवल बुद्धि को ही निर्णायक बनाकर, वह अन्याय को भी सही ठहरा सकता है। जो वास्तव में पतन है, उसे भी वह उत्थान समझ बैठता है।

उदाहरण के लिए, एक युवक को सप्ताह के अंत में वेतन मिला और वह तीन सौ डॉलर जेब में डालकर घर की ओर चला। लापरवाही से उसका बटुआ गिर गया और उसने नहीं देखा। उसके पीछे चल रहे व्यक्ति ने देख लिया। उसने बटुआ उठाया और उसे खोलकर देखा, उसमें पैसे थे। वह भला आदमी था, अतः मन में पहला खयाल यही आया कि इसे लौटा दूँ। उसके मन में कल्पना उठी कि वह दौड़कर उस युवक के पीछे जा रहा है, उसे झिंझोड़कर डाँट रहा है, 'नादान युवक! क्या तुम्हें अपने पैसे की रक्षा करना भी नहीं आता? यह लो!'

लेकिन तभी एक अन्य विचार श्रृंखला उसके मन में उठी, 'कई दिनों से मैं बेरोजगार हूँ। मैंने सुना है कि भगवान उनकी मदद करता है जो स्वयं अपनी मदद करते हैं! वह कई अनजान तरीकों से हमारी मदद करता

है। यह उन्हीं में से एक होगा। अन्यथा, जब उस युवक ने अपना बटुआ गिराया तब मैं ही यहाँ क्यों था, और कोई क्यों नहीं? मेरे मन में चोरी की बात नहीं है। मैंने कुछ चुराया नहीं है। भगवान ने मेरी झोली में यह बटुआ फंका है। यह एक दिव्य उपहार है। मैं इसे अस्वीकार कैसे करूँ? यह भगवान का अनादर होगा! हर चीज़ के पीछे कोई कारण होता है, और यह मेरे लिए एक संकेत है।' इस तरह कुतर्क करता हुआ वह बटुआ लिए खुशी से घर चला गया।

घर पर उसकी सुंदर और शांत पत्नी राह देख रही थी। जब वह शराब की बोतल लेकर घर में प्रविष्ट हुआ, उसने अपनी बीवी से कहा, 'आज रात हम खुशियाँ मनाएँगे!'

'यह कैसे हो सकता है?', उसकी बीवी ने पूछा, 'हमारे पास तो धन नहीं है।'

'जब तुम्हें भगवान पर विश्वास हो, तो वह तुम्हारी मदद करता है,' पति ने कहा। 'मानवीय मन कल्पना भी नहीं कर सकता कि भगवान ने उसके लिए क्या सोच रखा है; आज मुझे तीन सौ डॉलर मिले।'

पत्नी ने पूछा, 'यह तुम्हें कैसे मिले?'

'एक युवक जा रहा था और उसने अपना बटुआ गिरा दिया,' उसने पत्नी से कहा, 'वह मेरे रास्ते में पड़ा था, एक दिव्य उपहार। मैंने उठा लिया। मैंने और कुछ नहीं किया।'

पत्नी ने बड़ी कोमलता से समझाया, 'क्या तुमने नहीं सोचा कि जब वह खुशी से घर जाएगा, क्योंकि उसे आज ही एक सप्ताह का वेतन मिला है, तो मेरी ही जैसी कोई दूसरी युवती उसकी राह देख रही होगी? जब वह उससे कहेगा, 'देखो मैं वेतन के पैसे लाया हूँ!' और जेब में हाथ डालेगा और देखेगा कि जेब खाली है, तो उसे जो गहरा दुःख होगा, क्या तुम उसकी कल्पना कर सकते हो? उसके अवसाद की कल्पना कर सकते हो? जब उसे पता चलेगा कि उसकी सात दिनों की मेहनत बेकार हो गई, तो उसे कैसे लगेगा? हम तो रात को अच्छा खाना खा लेंगे और जलसा भी

मना लेंगे, मगर उस व्यक्ति का क्या जो बिलकुल निराश और हताश हो गया है? क्या तुमने इस बारे में सोचा है?’

बुद्धि एक दुधारी तलवार है। वह दोनों तरफ से काट सकती है। उसका उपयोग विकास के लिए हो सकता है या संदिग्ध बातों को उचित ठहराने के लिए, यह कहकर कि इनके पीछे भगवान का हाथ है। इसी तरह की बुद्धि के कारण कुछ व्यक्ति भगवान के नाम पर पशुबलि को भी उचित ठहराते हैं। भगवान के नाम पर जानवरों को कत्ल करते हैं। भगवान मांस का भोग नहीं करते, पर पुरोहित खाते हैं, यह कहते हुए, ‘धन्यवाद।’ धन्यवाद किसको? उस बुद्धि को जो विकृत करती है, जोड़-तोड़ करती है एवं अज्ञात, अदृश्य भगवान के नाम पर जानवरों के कत्ल को उचित ठहराती है।

इस तरह से तो किसी भी कार्य को न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। व्यभिचार को तांत्रिक सिद्धि बताकर उचित ठहराया जाता है। यदि आप उसका विरोध करें, तो लोग कहते हैं कि आप नहीं जानते कि आप क्या कह रहे हैं, आप समय के साथ नहीं चल रहे हैं। कुछ लोग नशीले पदार्थ खाकर अपने मस्तिष्क की कोशिकाओं को जला डालते हैं, लेकिन इसे उचित ठहराते हुए कहते हैं, ‘मैं स्वर्ग में हूँ, मैं इतने सारे रंग देख रहा हूँ।’ यदि आप उन्हें समझाएँ कि यह वहम मात्र है, तो वे आपका मजाक उड़ाते हैं। यदि आप उनसे कहें कि वे जो कुछ देख रहे हैं, उसका कोई मतलब नहीं है, तो वे कहते हैं, ‘तुम्हें कैसे पता? क्या तुमने कभी ये दवाएँ ली हैं?’ ये सब ऐसे रास्ते हैं जिसके द्वारा मन रूपी सीढ़ी हमें नीचे की ओर ले जा सकती है।

इसीलिए गुरुजन नवदीक्षितों से ज़ोर देकर कहते हैं कि मन को शुद्ध करो; वह कच्चे तेल के समान है। उसे परिष्कृत करना आवश्यक है। यदि आप हवाईजहाज में अपरिष्कृत तेल डालेंगे तो क्या होगा? वह आपको ऊपर नहीं ले जाएगा। तेल का उपयोग करने से पूर्व उसे पेट्रोल बनने की प्रक्रिया से गुज़ारना होगा। एक बार वह शुद्ध हो जाए, तो हवाईजहाज में उसका उपयोग हो सकता है। आप उस पर निर्भर रह सकते हैं। आप

आसमान में हैं और आपने अपना जीवन उसके हाथों में सौंप दिया है। इस तरह परिष्कृत किया हुआ तेल हवाईजहाज उड़ाने के लिए उपयुक्त ईंधन है।

इसी तरह यह मन एवं बुद्धि, अपने अपरिष्कृत रूप में खतरनाक हो सकते हैं। यहाँ हम उसे परिष्कृत करना सीख रहे हैं। इसमें समय लगेगा। हम उसे त्यागना नहीं चाहते, उसका बहिष्कार नहीं करना चाहते, उसे नष्ट नहीं करना चाहते। वह बहुत मूल्यवान है। ज़रा सोचिए, हमारा मन कितना शक्तिशाली है - वह सैकड़ों लोगों को एक ही हवाईजहाज में बिठाकर आसमान की सैर करा सकता है। वह क्या है जो हवाईजहाज को उठा रहा है? वह स्वयं हवाईजहाज नहीं है, वह मानवीय मन है। इस करिश्मे को संभव बनाया है मानवीय मन ने, यदि मन न होता तो हवाईजहाज नहीं होता, वह आसमान में नहीं उड़ पाता। किसी पत्थर को हवा में फेंककर देखिए; वह तुरंत ही नीचे आ जाएगा। एक हलका सा पंख भी आसमान में नहीं टिक पाता। यहाँ सैकड़ों टन का हवाईजहाज चौदह घंटे तक आसमान में उड़ता ही रहता है! और हम सब उस पर विश्वास करते हैं। इस विश्वास का आधार क्या है? वह जड़ हवाईजहाज नहीं, बल्कि मानवीय मन है जिसने इस अद्भुत मशीन को बनाया है, और वह मन ही है जो उसे उड़ा रहा है।

आपका जीवन एक हवाई जहाज से ज़्यादा कीमती है। आप किसी भी कीमत पर उसको नष्ट नहीं कर सकते। आप गतिहीन रहकर या मस्तिष्क को अपरिष्कृत रखकर उसे खराब नहीं कर सकते। उसे परिष्कृत करने में लग जाइए, वह आपकी ऊर्जा को शुद्ध कर जीवन में सौंदर्य और सामरस्य पैदा कर देगा, आपको विकास के पथ पर आगे ले जाएगा। बुद्धि को कैसे परिष्कृत करें? आपको प्रशिक्षण, जागरण और साधना का मार्ग अपनाना पड़ेगा। जैसे-जैसे आप मन को शुद्ध करते जाएँगे, मन में जमा ठोस तत्त्व धीरे-धीरे निकलता जाएगा और वह अधिक स्वच्छ और साफ हो जाएगा। आपमें जो स्वच्छ, सूक्ष्म और सुंदर है, वह बाहर आएगा; जब आप सूक्ष्म हो जाएँगे, आपके विचार भी पारदर्शी हो जाएँगे, वे स्थूल और अपरिष्कृत नहीं रहेंगे। वे आपको चारों ओर नहीं दौड़ाएँगे। वे आपको सही दिशा में ले जाएँगे।

साधकों के लिए यह सही दिशा, यह परिष्करण, यह अंतर्दृष्टि 'बोधि' कहलाती है। बोधि का अर्थ है जानना, जागृत होना। यह वह ज्ञान है जो आंतरिक प्रविष्टि से, आंतरिक अनुभव से आता है। बोधि के अनेक अर्थ हैं। यह शब्द बुद्ध से निकला है, जिसका अर्थ है, 'वह जो जानता है'।

ग्यारहवीं भावना का नाम है बोधि दुर्लभ, जिसका अर्थ है - इस तरह के प्रबुद्ध ज्ञान को प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयाँ और उनकी विरलता। ज्ञानोदय के पथ की खोज में समय और ऊर्जा दोनों की आवश्यकता है। इस चिंतन में शिष्य यह देखकर विस्मित और आनंदित होता है कि उसने इस पथ को जाना है, उस पर सफर किया है। दरअसल बोधि इतनी विरल और कीमती निधि है कि उसकी तुलना एक अद्भुत, कांतिमयी हीरे से की गई है। भारतीय सम्राट अपने मुकुट में जो चमकदार हीरा जड़ाते थे, उसे कोहिनूर कहा जाता था। ऐसा हीरा हरेक को उपलब्ध नहीं था; वह मात्र विशिष्ट लोगों के लिए था। इसी तरह आंतरिक बोध एक दुर्लभ निधि है जो 'साधारण' लोगों के बस की बात नहीं है। 'साधारण' से हमारा तात्पर्य क्या है? इसका पद, पैसे या पदवी से कोई संबंध नहीं है। साधारण व्यक्ति वह है जिसके पास आंतरिक संपदा नहीं है।

इस आंतरिक संपदा का वर्णन कैसे करें? विचार कीजिए कि आपके जीवन में ऐसा एक पल आता है, जब आप अनुभव करते हैं कि जिसका अंत हो रहा है, वह देह मात्र है, आत्मा नहीं है। यह अनुभूति ध्यान से आ सकती है, सही गुरु के शब्द सुनकर या सही संगति में रहने से आ सकती है। धीरे-धीरे आपके अंतर्मन में इस सत्य का जागरण होता है। आप चिंतन करते हैं, 'मैं शरीर मात्र नहीं हूँ। मैं इस शरीर में रह रहा हूँ। मैं अजन्मा हूँ।' इसलिए यद्यपि आपने जन्म लिया है, फिर भी आप अजन्मा हैं। यह बात विचित्र लगती है। आप सोच सकते हैं, 'मैं अपने आपको अजन्मा कैसे कह सकता हूँ? मेरे जन्म का प्रमाणपत्र मेरे पास है।' आप यह जानते हैं कि जिसके पास जन्म का प्रमाणपत्र है, उसके पास मृत्यु का प्रमाणपत्र भी होता है। यह वास्तविकता है। और यह एक संतुष्ट करने वाला विचार है कि हमारे सारे प्रयास श्मशान घाट में समाप्त होते हैं। यह बहुत ही दुःखदायी, नीरस विचार है।

इसलिए हम गहराई में जाते हैं। हम बौद्धिकता के पार चले जाते हैं। हम अनुभव करने लगते हैं कि हमारे अंतर्मन में ऐसा कुछ अवश्य है जो मृत्यु पर विश्वास नहीं करता। यदि हम मृत्यु पर सचमुच विश्वास करते, तो सुबह उठ नहीं पाते। जब हमें किसी की मृत्यु का समाचार मिलता है, तो हम ज़रा दुःखी होते हैं, हम किसी और को यह सूचना दे देते हैं, और फिर अपनी राह चले जाते हैं। दूसरों की मृत्यु का समाचार सुनकर भी हम अपनी मृत्यु के बारे में नहीं सोचते।

हम क्यों नहीं सोचते, 'मृत्यु आ रही है! अच्छा होगा यदि मैं कोई पूर्वोपाय कर लूँ!' जब हमें खतरे का एहसास होता है, तभी हम बचाव का कदम उठाते हैं। क्या मृत्यु सबसे बड़ा खतरा नहीं है? फिर भी हम जीवन का मज़ा लेते रहते हैं। ज़रा सोचिए। क्या इसका मतलब यह है कि हम मृत्यु में विश्वास नहीं करते? क्या हम शंकालु हैं? क्या हम समझते हैं कि मृत्यु मात्र एक छलावा है? यदि वह हमारे लिए वास्तविक होता, तो हम उसे अधिक गंभीरता से लेते। इससे स्पष्ट है कि हम देखते तो हैं, मगर अपनी दृष्टि पर विश्वास नहीं करते हैं। हम अपनी आँखों पर विश्वास नहीं करते। यह जानते हुए कि वहाँ जल नहीं है, हम मरीचिका के पीछे नहीं भागते।

इसी प्रकार हम मृत्यु को देखते हैं, फिर भी उससे भयभीत नहीं हैं। इसके पीछे गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है। यह एक रहस्य है - हमारा अंतर्वासी जानता है कि मृत्यु नहीं होती, क्योंकि वह अजन्मा है। हमारे अंतर्वासी ने कभी जन्म नहीं लिया। आंतरिक जीवन प्रामाणिक है। हमें अनुभूति होती है, 'जो मरता है, वह शरीर है, मैं नहीं। मेरी इंद्रियाँ मर जाएँगी। मैं इंद्रियाँ नहीं हूँ। मैं उनसे परे हूँ। मैं इंद्रियों को खिड़कियों के रूप में इस्तेमाल करता हूँ और जब मैं इस घर में, इस शरीर में निवास कर रहा हूँ, तब उन्हें साफ रखने का प्रयत्न करता हूँ।' हमारा अंतर्वासी इस घर से या खिड़कियों से अपनी पहचान नहीं बनाता है। वे सभी द्रष्टा से पृथक हैं।

यदि खिड़कियाँ और उनसे देखने वाला दोनों एक होते, तो देखना ही नहीं होता, न कुछ दिखता, न देखने की प्रक्रिया ही होती। इसलिए यहाँ हम समझ जाते हैं कि जब व्यक्ति वृद्ध हो जाता है और आँखें मूँद लेता है,



तब भी वह अपने भीतर देख सकता है। अंतर्वासी उसकी अनुभूति करता है जिसे उसने किसी दूसरे काल में देखा है।

जब आपको ऐसे ज्ञान की अनुभूति होगी, तब आप नहीं कहेंगे, 'मैं ज्ञान का मालिक हूँ।' आप कहेंगे, 'मैं ज्ञान हूँ। पहले मैं अज्ञान में डूबा हुआ था। अब मैं स्वयं को अनावृत कर रहा हूँ। मैं छुपा हुआ था। अब मैं बाहर आ रहा हूँ। मैं नकाब और पर्दे हटा रहा हूँ ताकि मेरी आत्मा का सत्य उजागर हो सके।' जब आप स्वयं में विश्वास करते हैं, तब अपनी आंतरिक संपत्तियों (संपदा) का अनुभव करने लगते हैं। इससे इतना गहरा आत्मविश्वास मिल जाता है कि आपको अंतर्दृष्टि प्राप्त होने लगती है, आपकी शंकाएँ दूर होने लगती हैं। बाहर से जो शंकाएँ आती हैं, वे बाहर ही रहती हैं; वे आपके आंतरिक संसार का हिस्सा नहीं बनती।

बोधि रूपी अपनी आंतरिक निधि को उजागर करने से पूर्व हम मिथ्यात्व से घिरे रहते हैं। मिथ्यात्व के कारण हम एक वस्तु को कोई दूसरी वस्तु समझ जाते हैं। हमारी सबसे बड़ी भूल यह है: हम देह को आत्मा समझ लेते हैं और आत्मा को देह। इस असमंजस में पीड़ा है क्योंकि हम इन दोनों में अंतर नहीं कर पाते। जब शरीर को कुछ होता है, हम अपनी आत्मा को उसमें अंतर्भूत कर देते हैं। इससे हमारी मनोवृत्तियाँ, भय, अवसाद और प्रक्षेपण शुरू होने लगते हैं।

मिथ्यात्व के कारण हम नहीं देख पाते कि आत्मा की आकांक्षा शरीर की इच्छाओं से बिल्कुल भिन्न है। जब ये दोनों उलझ जाते हैं, तब हम प्रेम को कामुकता समझते हैं, और कामुकता को प्रेम। हम एक वस्तु चाहते हैं, मगर बदले में दूसरी वस्तु ले लेते हैं। इसलिए हमें अपने आप से पूछना चाहिए, 'आत्मा का साहचर्य पाने की मेरी आकांक्षा क्या है? शरीर की परितुष्टि की मेरी आकांक्षा क्या है?'

हमें प्रेम चाहिए। वह आत्मा का भोजन है; हम उसके बिना जी नहीं सकते। प्रेम योजना नहीं है, वह स्मरण नहीं है। वह इस वर्तमान क्षण में ही विद्यमान रहता है। प्रेम में जकड़ने की, पाने की या बाँधने की कोई इच्छा नहीं होती। किसी व्यक्ति या वस्तु को पकड़े रखने का अर्थ है अपने आपसे अलग होना। अपने आपसे अलग होकर, आप वर्तमान क्षण से अलग हो

जाते हैं, क्योंकि आपकी ऊर्जा भविष्य पर खर्च हो जाती है। इस तरह जीवन का अनुभव, प्रेम का अनुभव आपके हाथों से निकल जाता है। जब आप इस सूक्ष्म बात को समझने लगते हैं, तो आप जान जाएँगे कि प्रेम का अतीत या भविष्य से कोई संबंध नहीं है।

प्रेम सिर्फ 'रहना' है। उसका अर्थ है साहचर्य में रहना। आप किसी के भी साहचर्य में रह सकते हैं जो आपसे संप्रेषण करे और आपसे किसी तरह का भाव या तारतम्य बिठा ले। आप किसी पौधे, बच्चे, जानवर, नानी, गँवार या किसी मूर्ख से प्रेम कर सकते हैं। उससे कुछ भी हासिल नहीं करना है, सिर्फ क्षण में विद्यमान 'रहना' है, जीवन के साथ भिन्न-भिन्न आकारों में अनुभव एवं संप्रेषण करना है।

इसी तरह आप अपनी आत्मा से शर्तरहित प्रेम की अनुभूति करते हैं। आप स्वयं के साथ तारतम्य में जुड़ जाते हैं। जब कोई व्यक्ति प्रेम में हो, वह स्वयं को रोकता नहीं है। वह अपनी संपूर्ण निधि निस्संकोच लुटा देता है। वह नहीं कहता, 'यदि मैं इसे रख लूँ, तो भविष्य में काम आएगी।' नहीं, वह कहता है, 'आज के दिन मुझे जीने दो।' आप इस अनुभव को प्रतिदिन निर्मित करते हैं और अपनी जीवन शैली में बदल देते हैं। इस तरह आप अपने दिन को भविष्य के विचारों और चिंताओं से भर नहीं लेते। अब आपका जीवन यहीं है, इसी क्षण में, प्रेम के साथ।

नवदीक्षितों को बंधुओं के समान जीना सिखाया जाता है। संत जन साथ में रहते हैं, फिर भी अपनी वैयक्तिकता बनाए रखते हैं। ऐसा कहने से प्रतीत हो सकता है कि इसमें कोई योजना है, जिसके अनुसार सब कुछ हो रहा है। लेकिन वास्तव में वैयक्तिकता बिना किसी योजना के, बिना किसी इरादे के ही बनी रहती है। ऐसा कैसे संभव है? यह बहुत ही सूक्ष्म बात है; आप अपनी वैयक्तिकता इसलिए बनाए रख पाते हैं क्योंकि आपका ऐसा करने का कोई इरादा नहीं है।

यह बात समझने में कुछ कठिन है, क्योंकि सामान्यतः आपको सिखाया जाता है कि आपको योजना बनानी है, किसी के साथ अपनी पहचान बनानी है, किसी के साथ जुड़ना है। पर यहाँ आपके पास कोई बंधन नहीं है; आपके पास 'आप' स्वयं हैं! जब आप इसे समझ जाएँगे, तो

आप अपने अतीत से अलग हो जाएँगे, अपने भविष्य से दूर हो जाएँगे और पूछेंगे, 'जब मैं सभी से अपने आपको अलग कर लूँ, तो क्या बचता है? जो बचता है, वह मैं हूँ। जो बचता है, वह मेरा जीवन है। इसी को इस समय संप्रेषण करना कहते हैं।' वह यहाँ है, इसी समय है और निरंतर संप्रेषण कर रहा है।

यह ग्यारहवाँ चिंतन, बोधि दुर्लभ, बुद्धि के स्थूल तत्त्वों को नष्ट करने में मदद करता है। आप इन्हें इतना सूक्ष्म बना देते हैं कि वे आपके सहायक बन जाते हैं। आप समझने लगते हैं कि आप आत्मा के सिवा कुछ नहीं हैं। आप समझने लगते हैं कि आत्मा का और कोई ध्येय नहीं है, साहचर्य में रहने के सिवा। बस, अब यहाँ से उपलब्धि का विचार पीछे छूट जाता है।

हम सब उपलब्धि के भाव की ओर उन्मुख हैं। कई लोग पूछते हैं, 'आपने अपने जीवन में क्या हासिल किया है?' यदि आप इस प्रश्न पर विचार करते रहें, तो आप इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि आप एक विफल व्यक्ति हैं। आप सोच सकते हैं, 'मैंने क्या पाया है? कुछ नहीं। मेरा सारा जीवन व्यर्थ गया।' मैंने ये शब्द सभी वर्गों के लोगों से सुने हैं। वे कहते हैं, 'मुझे लगता है कि मैं विफल रहा हूँ। मैं चिकित्सक बनना चाहता था, पर मैं पढ़ाई में अच्छा नहीं था। मैं वकील बनना चाहता था, पर मुझे सही अंक नहीं मिले। मैं अभिनेत्री बनना चाहती थी, पर मुझे मौका न मिल सका। मैं अच्छा जीवन साथी पाना चाहता था, पर सबने मुझे धोखा दिया।' मैंने लिपिक देखे हैं जो प्रबंधक बनना चाहते थे, प्रबंधक देखे हैं जो मालिक बनना चाहते थे। यह इस बात का सबूत है कि लोग किस तरह विफलता के विचारों के साथ जीते हैं।

उपलब्धि क्या है? जब मैं कॉलेज में था, मैंने भारत के सबसे अमीर और शक्तिशाली राजाओं में मैसूर के महाराजा कृष्णराजवाडियार को अपनी चिता में राख का ढेर बनता हुआ देखा। बाद में मैंने उनके सारे हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर और सेना को उनके राजमहल में लौटते देखा। जिसके पास इतनी सारी संपत्ति थी, वह अकेला जंगल में पड़ा था, राख का एक ढेर

बने। अरबों रुपये, नाम और ख्याति, इन सबका क्या लाभ हुआ? क्या इसी को उपलब्धि कहें?

पर मन यह बात समझने के लिए तैयार नहीं है। मन हमेशा आपको दुःखी बनाता रहता है, और ऐसे विचार देता है कि आपने कुछ भी प्राप्त नहीं किया है। वह आपका उपहास करता है। इस आंतरिक उपहास के कारण आप दुःखी रहते हैं। अपने समय में आप चाहे जो कर लें, जब यह विचार मन में उठता है कि 'मैंने क्या हासिल किया?', सब कुछ व्यर्थ लगता है। आपने जो भी अच्छे काम किए हों, उन सभी को मन नकार देता है। वह आपकी तुलना कभी इस व्यक्ति से और कभी किसी और से करता रहता है। और यह विफलता आपको काटने लगती है, दुःखी बनाने लगती है, आप पर बोझ बन जाती है। आप इतने बोझिल हो जाते हैं कि अब आपको जीवन में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। इस संसार में कहीं न कहीं ऐसा कोई व्यक्ति होगा ही जिसके हासिल पास आपसे ज्यादा है, जिसने आपसे ज्यादा हासिल किया है।

इसलिए गुरु नवदीक्षित से कहते हैं, 'तुम्हारी उपलब्धि है बोधिदुर्लभ। तुम्हारी उपलब्धि है चिरस्थायी और क्षणभंगुर में अंतर जानना, बाहरी पोशाक के अंदर छिपी दौलत को जानना।' सही या गलत कुछ नहीं होता है, केवल वास्तविक और अवास्तविक होता है। ये दोनों भी उलझ गए हैं। इसके लिए किसी को दोषी ठहराना बेकार है। केवल यह देखना जरूरी है कि किस तरह बाहरी प्रभाव और अज्ञान ने मिलकर इन दोनों की पहचान मिटा दी है।

यह बोध इस उलझन पर प्रकाश डालता है। एक बार सत्य और असत्य दोनों नदी में नहाने गए। गरमी के दिन थे, इसलिए कपड़े उतारकर दोनों नदी में कूद पड़े। वे मजे से तैर रहे थे कि असत्य को एक विचार आया। वह नदी से पहले बाहर निकल आया और उसने सत्य के कपड़े पहन लिए। जब सत्य बाहर आया, तो उसने देखा कि उसके कपड़े तो गायब हैं, उसने अपने आप से कहा, 'समाज में नंगा घूमना ठीक नहीं होगा, इसलिए मैं असत्य के ये कपड़े पहन लेता हूँ।' उस दिन से दोनों समाज में

एक-दूसरे के कपड़े पहने घूम रहे हैं, और कोई भी पूर्ण रूप से नहीं जानता कि असल में कौन क्या है, क्योंकि उनके बाहरी रूप इतने विपरीत हैं।

वास्तविकता को देखिए, न कि उसके बाहरी आवरण को। किसी का बाह्य रूप देखकर धोखा मत खाइए। देखिए कपड़े पहने कौन खड़ा है। आँखों से हम जो देखते हैं, वह भ्रामक है क्योंकि असली वस्तु अंदर है। वह मात्र हमारी आँखों से दिखती नहीं है, कान उसे सुन नहीं सकते, न ही हमारे हाथ उसे स्पर्श कर सकते हैं। वह हमारी इंद्रियों से परे है। वह हमारे केन्द्र में स्थित है। उसकी अदृश्य उपस्थिति के सहारे हम इस दृश्य संसार को देख पाते हैं।

आप केवल बाह्य को देखते हैं, मगर असली द्रष्टा आपके अंदर है। आत्मा का जन्म नहीं होता है, न ही उसका अंत होता है। जब आप अपनी गहन अनुभूति में इसका एहसास करते हैं, तब आप अपनी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि को छू लेते हैं। बाकी सब उपलब्धियाँ बाह्य हैं। वे बाहर ही रहती हैं और श्मशान घाट में राख बन जाती हैं। पर उस उपलब्धि में आपसे कुछ नहीं छूटता, क्योंकि आप स्वयं अपनी उपलब्धि हैं।

इसीलिए इस दुर्लभ अवसर पर ध्यान करने में सार्थकता है। हम समझ जाते हैं, 'यह दुर्लभ अंतर्दृष्टि जो मेरे हृदय में प्रकट हुई है, चमकदार रत्न से भी विरल है। यह मुझसे कभी अलग नहीं होगी। यह इसी पल इसी जगह मुझे पूर्ण बना रही है। यह मेरी आंतरिक दिव्यता है। इसीलिए मैं कह सकता हूँ कि मैंने इसे पा लिया है।' जब भी आपको सांसारिक उपलब्धियों की कमी खले, अपने आपको इस अमूल्य खज़ाने की याद दिलाएँ, इस बहुमूल्य आंतरिक निधि की याद दिलाएँ। हर दिन याद दिलाएँ जब तक आपका मन इसे संपूर्णता से मान न ले।

यही आपका काम है - मन को शुद्ध करना, बुद्धि को शुद्ध करना, परिपूर्ण शुद्ध। एक बार वह शुद्ध हो जाए, तो वह एक उपयोगी सीढ़ी बन जाएगी जिसकी मदद से आप अपने आपको उठा सकेंगे। तब वह आपको गिराने का कारण नहीं बनेगी। जब आप ऊँचाइयों तक पहुँच जाएँगे, भीतरी स्पष्टता तक पहुँच जाएँगे, आपको वास्तविकता के अंतिम पहलू की अनुभूति हो जाएगी जो है धर्म, आध्यात्मिक सत्त्व, आंतरिक सत्य।

## चिंतन के बिंदु

मैं ज्ञान प्राप्त नहीं करता, मैं ही ज्ञान हूँ। पर्दा हटाकर मैं अपने आपको प्रकट कर रहा हूँ।

जब मैं शरीर की इच्छाओं को आत्मा की अभिलाषा समझ बैठता हूँ, मैं देख नहीं पाता कि प्रेम क्या है। प्रेम आत्मा का पोषण है। वह सिर्फ 'है', वह किसी को पाना नहीं है। वह है साहचर्य में रहना।

मुझे उस क्षण की खुशी मनाने दो जब मुझे विदित होगा कि मैं चिरस्थायी, अजन्मा, अविनाशी हूँ। जब मैं इस दुर्लभ आंतरिक निधि को अनुभव करूँगा, वह मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।



## हमारी प्रकृति की वृत्ति

जीवन एक महासागर है जिसमें तरंगों और लहरें निरंतर चलायमान हैं। एक भी पल नहीं आता जब सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार और भाटे निरंतर आते जाते हैं। इस महासागर में हम भी तरंगों के साथ आते-जाते रहते हैं। इन तरंगों के कारण हमारा मन भी स्थिर नहीं रहता।

जब हम अपने बारे में ही विश्वस्त नहीं होते, हमारे अंदर असमंजस पैदा हो जाता है। हम नहीं जानते कि हमें क्या चाहिए, हमें कहाँ जाना है। हम यह भी नहीं जानते कि हम यहाँ क्यों हैं। अंततः हमारे पास बस यह करने के लिए बचता है कि हम खाली दिनों को तुच्छ और अर्थहीन कार्यवाहियों से भर लें। पर हमें इन पुराने, घिसे-पिटे विचारों को हमारे जीवन से उसी प्रकार बाहर फेंकना है जिस प्रकार हम कूड़े-करकट को फेंकते हैं। अन्यथा हम उन बच्चों के समान होंगे, जो कल्पनालोक में विचरते हैं और छोटे-मोटे खिलौनों से चिपके रहते हैं। हमारा जीवन सतह पर रहेगा, हम बस कल्पनालोक में विचरते रहेंगे और अपने अस्तित्व की वास्तविक गहराइयों को उजागर नहीं कर पाएँगे।

इसलिए अपने आपसे पूछें, 'इस अस्थिर और बेचैन संसार में स्थायी क्या है?' तरंगें स्थायी नहीं हैं; भावनाएँ और विचार निरंतर बदलते रहते हैं। इस तरह नवदीक्षितों के शिक्षण का अंतिम सोपान आ जाता है - तरंगाघित महासागर से निकलकर धर्म के स्थिर टापू पर आना, जो वास्तविकता है। धर्म के कई अर्थ हैं: वास्तविकता, धार्मिक संप्रदाय, सच्चाई और प्रकृति।

धर्म का पहला अर्थ है वास्तविकता। जब आपको अपनी वास्तविकता की गहरी अनुभूति हो जाती है, आप स्थिर रह पाते हैं। यदि आप उस स्थिर टापू तक नहीं पहुँच पाए, तो आप निरंतर क्रियाशीलता, प्रतिक्रियाशीलता की स्थिति में रहेंगे, निरंतर इंद्रियों, इच्छाओं, भावनाओं और विचारों से उलझे रहेंगे। इनका कोई अंत नहीं है! जैसे ही एक इच्छा

पूरी होती है, दूसरी उठ आती है, उसी प्रकार जैसे महासागर में तरंगें। जैसे ही एक तरंग समाप्त होती है, दूसरी पैदा हो जाती है।

आप कितनी तरंगों को गिन सकते हैं? आप कब तक अपने आपको तरंगों द्वारा इधर और उधर खींचे जाने को बर्दाश्त करेंगे? अपने जीवन की भी सोचिए। क्या आपको याद आता है कि आपने कभी कहा हो, 'यदि मैं इस उद्देश्य को पूरा कर लूँ, तो मैं खुश हो जाऊँगा?' वह पाँच साल पहले की बात होगी, और वह उद्देश्य पूरा भी हो गया होगा, लेकिन आप फिर भी खुश नहीं हैं। एक इच्छा शमित हो गई है, पर दूसरी उभर आई है। यही मन की प्रकृति है। वह इच्छाओं और वस्तुओं और सुख की माँग में फर्क ही नहीं कर पाता।

जब तक आप किसी स्थिर स्थान को न पहुँचे, आप संतुष्ट कैसे हो सकते हैं? आपका धर्म ही वह स्थिर स्थान है। अपने आप के साथ रहने का अनुभव दुनियाँ की हर खुशी से बेहतर है। भीतरी शांति की अनुभूति से बढ़कर कोई अनुभूति नहीं है।

उस केन्द्रीय, मूल वास्तविकता तक पहुँचने से आपको रोक रही हैं आपकी इच्छाएँ। इसीलिए संतुष्टि से जो शांति आ सकती है, उसके आनंद से आप अनजान हैं। इच्छाएँ निरंतर उस केन्द्रीय तत्त्व से आपको दूर ले जाती हैं। जब आप ध्यान करने के लिए बैठे हैं, तब भी इच्छारूपी तरंगें आपको परेशान कर देती हैं। आप अपने आपसे कह सकते हैं कि ध्यान करना उबाऊ है। आप कह सकते हैं, 'मैं दो घंटे तक बिना कुछ किए बैठा रहा, और बदले में थकान के सिवा मुझे कुछ नहीं मिला।' यह इसलिए क्योंकि आप वास्तव में ध्यान नहीं कर रहे थे। आप अपने मन से कुशती लड़ रहे थे। ध्यान के लिए कहाँ अवकाश था?

जब आप चेतना के उस स्तर तक पहुँच जाएँ जब कोई भी चीज़ आपको विचलित नहीं करती, तब आप शांत हो जाते हैं। उस स्तर तक पहुँचने के लिए आपको बहुत सारी चीज़ों को छोड़ना पड़ेगा। उन्हें छोड़ने के लिए शायद आप तैयार न हों। आप उन्हें पकड़े रहते हैं, यह सोचकर कि किसी न किसी दिन ये काम आएँगे! इसीलिए आप साधना के दौरान भी शांति और समता की अनुभूति नहीं कर पाते। मैं कहता हूँ, यदि एक बार



आप अपने केन्द्रीय स्थान तक पहुँच जाएँगे, आप वहाँ से आना ही नहीं चाहेंगे। वहाँ से बाहर आना पीड़ादायक होगा। आप एक गहरी शांति की अनुभूति करेंगे जिससे बाहर आना ही नहीं चाहेंगे। कोई भी इच्छा आपको परेशान नहीं करेगी। कोई भी वस्तु आपको तंग नहीं करेगी। आप अपने साथ होंगे।

लेकिन उस समय आप अपने शरीर की ज़रूरतों को, जब-जब वे प्रकट होंगी, पहचान लेंगे। जब आपके शरीर को कोई ज़रूरत महसूस हो, आप उसे वही देंगे जो उसे सचमुच चाहिए। जब उसे आराम की ज़रूरत है, आप उसे आराम देंगे। जब उसे पोषण की आवश्यकता है, उसे भोजन देंगे। शरीर बोझ नहीं है, न ही वह किसी व्यसन पर निर्भर है। आप उसके लिए जो करेंगे, वह उसे एक ताज़े और स्वस्थ वाहन के रूप में बनाए रखने के लिए करेंगे। इन सबसे बढ़कर, आपका आंतरिक जीवन इतना समृद्ध, इतना पूर्ण हो जाएगा कि आपको लगेगा कि आपको भीतर से ही पोषण मिल रहा है।

जब आप उस अंदरूनी पोषण स्रोत तक पहुँच जाएँगे, आप क्षणिक संतुष्टियों की ओर ध्यान नहीं देंगे जो आती और जाती हैं। आप देख लेंगे कि ये क्षणिक संतुष्टियाँ हमेशा घाव के निशान छोड़ जाती हैं। ये आपमें पीड़ा की कोई न कोई रेखा कुरेद कर जाती हैं। ध्यान में कोई पीड़ा नहीं होती, घाव के कोई निशान नहीं बनते, आप मात्र अपनी वास्तविकता के तादात्म्य में आ जाते हैं। यह धर्म का पहला अर्थ है।

धर्म का दूसरा अर्थ है- जुड़ना। जो मान को मानव से जोड़े वह धर्म है। अधिकतर हम धर्म को सम्प्रदाय से जोड़कर देखते हैं और दोनों को एक मान बैठते हैं। वस्तुतः धर्म और सम्प्रदाय अलग-अलग हैं। धर्म के सम्यक् परिपालनार्थ संप्रदाय का जन्म हुआ किन्तु आज यह धर्म के अर्थ में रूढ़ि हो गया है। सम्प्रदाय धर्म का अंग हो सकता है जैसे - श्वेताम्बर एवं दिगम्बर जैन धर्म के दो सम्प्रदाय हैं। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर धर्म नहीं हो सकते। धर्म जहां एकता को द्योतित करता है वहां सम्प्रदाय अलगाव को। अलग होना पीड़ादायक है; जुड़ना शांति है, सुख है। आप अपनी उच्च आत्मा से अलग हो गए हैं; इसीलिए आपको पीड़ा होती है। धर्म आपके अंदर का वह स्थान है जहाँ आप जुड़ते हैं, अपनी उच्च आत्मा से एकाकार

हो जाते हैं। अंततः आपको जुड़ना है। जीवन में ऐसा भी समय आता है जब सभी बाहरी आकर्षण सारहीन प्रतीत होते हैं। जब व्यक्ति अस्सी वर्ष का हो जाए और आप उसे ऐसी कोई चीज़ दें जिसे वह अठारह वर्ष की उम्र में चाहता था, तो वह कहेगा, 'नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। एक समय था जब मुझे इसकी चाह थी। अब वह चाह जाती रही। मैं स्वास्थ्य और शांति ही चाहता हूँ।'

धर्म शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से निकला है, जिसका अर्थ है धारण करना, उठाना, धार्यते इति धर्मः। जब आप गर्त में गिरने वाले हैं, तब जो आपको उठाए हुए रहता है, या आपको ऊपर उठाता है, वह धर्म है। वह गुण, वह अंतर्दृष्टि, वह धर्म आपके अंदर ही है। जब हम उसे पहचान लेते हैं, हम नहीं गिरेंगे। हमें यह बात समझनी चाहिए। अन्यथा मित्रों, हर कदम पर खतरा है; हर कदम पर कई प्रकार के प्रलोभनों का शिकार बनने का भय है। ये प्रलोभन सिर्फ शारीरिक या ऐंद्रिक ही नहीं हैं, बल्कि नफरत, भीतरी कटुता, भीतरी क्रोध, और भीतरी उदासीनता के प्रलोभन भी हैं।

जब आप दुःख, अवसाद या कटुता के शिकार हो जाते हैं, तो क्या होता है? आप इनके बारे में जितना सोचते रहते हैं, ये भावनाएँ उतनी ही अधिक बलवती होती जाती हैं। कटुता बढ़ती ही जाती है। दुःख और घना हो जाता है। जब आपको किसी के प्रति कड़वाहट की अनुभूति हो रही हो, तो अपने मन का निरीक्षण करें। अगर वह व्यक्ति चला गया, तब भी यह कटुता बनी रहती है। शायद उस व्यक्ति को पता भी नहीं चलता कि उसके प्रति आपकी भावना कैसी है, फिर भी वह कड़वाहट आपके भीतर सड़ती रहती है, आपके मन को कलंकित करती रहती है और आपकी मिठास को समाप्त कर देती है। इस तरह जीवन का बोझ बढ़ता जाता है। आप नहीं जानते कि इस तरह की नकारात्मकता आपको कहाँ ले जाएगी। मगर इसे धोने में, मन को साफ करने में समय लगता है। इसलिए हर कदम पर आपको अप्रमत्त रहना है, सावधान रहना है।

जो कड़वाहट से चिपका हो, वह स्वयं को पसंद नहीं करता। इस आत्म-तिरस्कार के कारण, वह दूसरों को अपने शत्रु के रूप में देखता है, उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो सारी दुनियां उसके विरुद्ध षड़यंत्र रच रही है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि में इस विरूपता को प्रक्षेपण कहा जाता है। ये सब इसलिए होता है क्योंकि हम अपने आप पर नज़र नहीं रख रहे हैं। नफरत, कटुता, दुःख और नकारात्मकता में गिरना आसान है, पर उनसे ऊपर उठ आना अत्यंत कठिन है।

नशीले पदार्थों का व्यसन इसी तरह की नकारात्मकता से आता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि इन पदार्थों के सेवन से आनंद की, उत्तेजना की अनुभूति होती है। दरअसल यह आत्म-छलावा मात्र है। जो नशा करता है, वह स्वयं के साथ नहीं रहना चाहता। वह स्वयं को भूलना चाहता है, अपनी सच्चाई से छिपना चाहता है। मगर दुर्भाग्य से नशा करने से मस्तिष्क की कोशिकाएँ धीरे-धीरे नष्ट होने लगती हैं। सामान्यतः सक्रिय रहने वाली ये कोशिकाएँ नशे के कारण काम करना बंद कर देती हैं और वह व्यक्ति शनै-शनै मंदता में डूबने लगता है। जब ये बुझ जाती हैं, तब बुद्धि, अभिज्ञता और विचार-शक्ति सब मंद पड़ जाते हैं। चेतना के फलने-फूलने की जो प्रक्रिया है, वही नष्ट हो जाती है।

इस भावना में अपनी क्रियाओं पर नज़र रखते हुए अपनी वास्तविकता पर निरंतर ध्यान करना है। अपनी आंतरिक एकता पर ध्यानस्थ रहते हुए कहें, 'मैं मैं हूँ। मैं दूसरों के अभिमत की चिंता क्यों करूँ? यदि मैं स्वयं के साथ नहीं हूँ, तो और कौन रहेगा? मैं मैं रहूँगा। अस्तु।' सभी समस्याएँ आत्मा को विस्मृत करने के कारण उत्पन्न होती हैं। उनका स्मरण आपकी रात-दिन की आदत बन जानी चाहिए, उसी तरह जैसे आप अपने नाम को याद रखते हैं। आपका नाम तो एक बिल्ला मात्र है, फिर भी यह बिल्ला कितना गहरा उतरा हुआ है। निद्रावस्था में भी आपको अपना नाम याद रहता है। जब आप निद्रामग्न हों, तब भी कोई आपका नाम ले, तो आप आँखें खोलकर कह उठेंगे, 'नमस्कार!' जो नाम आपके समर्थन के पूर्व ही आप पर थोप दिया गया था, यदि वह इतना गहरा पैठ जमा गया है, तो आपकी स्वयं की वास्तविकता उतनी ही गहरी क्यों न हो?

जब एक वस्तु को कोई दूसरी वस्तु समझ लिया जाता है, जब झूठ को सच मान लिया जाता है, जब अवास्तविकता को वास्तविकता मान

लिया जाता है, जब अस्थायी को स्थायी मान लिया जाता है, तब उसे मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व यानी भ्रान्त धारणा। आध्यात्मिक साधक के पथ का सबसे खतरनाक अवरोध यही मिथ्यात्व है। स्पष्टता के इसी अभाव के कारण हम अपने नाम को, जो अस्थायी है, स्थायी समझते हैं और अपनी वास्तविकता को, जो स्थायी है, अस्थायी मानते हैं। इसलिए हमें स्पष्टता से धर्म और अधर्म दोनों को समझ लेना चाहिए, जिससे हम वास्तविक और अवास्तविक दोनों को पहचान सकें।

दिन-रात स्वयं से निरंतर कहते रहें, 'मैं आत्मा हूँ। सोहम्। मैं वह हूँ। बाकी कुछ भी अर्थ नहीं रखता। चाहे कोई मेरी तारीफ करे या बुराई, मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता। मैं बेचैन, दुःखी या कटु होना नहीं चाहता। मैं 'मैं' होना चाहता हूँ।' इसे अपनी चेतना में अच्छी तरह बिठा दें। फिर आप देखेंगे कि आप कितने साहस के साथ अपनी पुरानी आदतों, व्यसनों और आवश्यकताओं को छोड़ देते हैं। अब आप आसानी से न ही प्रलोभन में फँसेंगे और न ही प्रभावित होंगे।

जब हमें निरंतर अपनी वास्तविकता का स्मरण रहेगा और हम स्वयं के तारतम्य में होंगे, तब भी हम इस संसार से प्रलोभनों को दूर नहीं कर सकेंगे। ये तो रहेंगे ही; फर्क बस इतना ही होगा कि अब हम उनसे अपनी पहचान नहीं बनाते हैं। आप पूछ सकते हैं, 'प्रलोभन तो बहुत हैं। हम शांति से कैसे रहें?' इसका उत्तर अप्रमत्त रहने में है। किसी वस्तु को भीतर लेने से पूर्व उसकी प्रकृति को जान लेना चाहिए। उसे भीतर लेना या न लेना आपके ऊपर है। कोई आपको स्फटिक के गिलास में मीठा पेय पेश कर सकता है। उसकी सुगंध से उसकी मिठास की सूचना मिल रही है, लेकिन यदि आपको खबर है कि उसमें विष की एक बूँद घुली हुई है, तो आप उसे कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। इसी प्रकार जब आप अवगत हो जाते हैं कि कोई विचार या वस्तु आपके लिए गुणदायक नहीं है, तो आप एक आंतरिक निर्णय लेते हैं कि आप उसे अपनी चेतना में नहीं लेंगे।

आइए इस प्रक्रिया को अधिक विस्तार से समझें। हमारे जीवन में चार तत्त्व हैं - शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा। जब ये चारों साथ मिलकर काम करते हैं, तो जीवन सार्थक बनता है। यदि हम इनमें से किन्हीं एक या

दो का ही उपयोग करेंगे, तो असंतुलन का खतरा रहेगा। मान लीजिए कि कोई आपको बादाम की मिठाई पेश करे, मगर आप जानते हैं कि उसमें भाँग मिली हुई है। पहली प्रतिक्रिया शरीर की होगी। नेत्र उस मिष्ठान के लुभावने आकार पर टिक जाएँगे, उस सुंदर पात्र से आकर्षित होंगे जिसमें वह मिठाई रखी हुई है। नथुने उसकी सुगंध का आस्वादन करेंगे। जिह्वा उसका स्वाद चखने के लिए आतुर हो उठेगी। तदुपरांत मन भी उसकी कामना करते हुए सोचने लगेगा, 'यदि मैं इसका भोग करूँगा, तो कुछ समय के लिए मैं इस नीरस दिनचर्या से मुक्त होकर आनंद-लोक में विचरण कर सकता हूँ।' मन कल्पनालोक में विचरना चाहता है। इसीलिए बच्चों को डिसनीलैंड और बड़ों को मिथक प्रिय लगते हैं। मानव का मन मिथकों के प्रति आकर्षित है।

तीसरी प्रतिक्रिया बुद्धि से आती है। यदि बुद्धि भी शरीर और मन की तरफ हो जाए, तब आप किसी भी तर्क से उस मिष्ठान को खाना विवेकसम्मत ठहरा देंगे। जब मन, शरीर और बुद्धि मिल जाते हैं, तो तीन का सामना एक से होता है। आत्मा तो सुषुप्तावस्था में है और बहुमत जीत जाता है। यहाँ खतरा हो जाता है क्योंकि निर्णय सर्वसम्मति से नहीं लिया गया है, और जहाँ सर्वसम्मति न हो, वहाँ सौहार्द नहीं रहेगा।

जब मन को आत्मा से रोशनी मिलती है, तब आप बुद्धिमत्ता से काम करते हैं। आप प्रतीक्षा करना सीख जाते हैं। जब आपके पास आत्मबोध हो, तब, यद्यपि शरीर और मन मिष्ठान का भोग करना चाहें, आपकी बुद्धि कहती है, 'हाँ, शरीर और मन! मैं तुम्हारी बात सुन रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम मिष्ठान चाहते हो, पर एक बार आदत लग जाए, तो मुझे बार-बार इसकी चाहत होगी। इसमें जो रसायन हैं, वे रक्त धारा में पहुँच जाएँगे और चाहतों को बढ़ाते जाएँगे।' आपकी आंतरिक चेतना आपको सुबोध विकल्प का चयन करने में सहायक बनती है। अब शरीर और मन सहमत हो जाते हैं।

हमें शरीर के कंपनों का मनोविज्ञान समझना चाहिए। एक बार आप रसायनों को अंदर आने देंगे, आप उनके गुलाम बन जाएँगे। वे इच्छाओं और तृष्णाओं में परिवर्तित हो जाएँगे। वे विनम्र मेहमानों के समान धीरे-

धीरे प्रवेश करते हैं और आप सोचने लगते हैं, 'अरे, एक या दो गिलास ही तो है,' पर यह पेय अंततः पूरे मनुष्य को पी जाता है। इसी को शराबखोरी कहते हैं। नशीले पदार्थ भी इसी तरह पूरे शरीर पर हावी हो जाते हैं। यौन संबंध की आसक्ति में भी एक प्रकार का रासायनिक प्रभाव निहित होता है। यदि आपका सहयोगी नकारात्मकता से भरा हो और आपकी वृद्धि में पूर्णतः बाधा डालता हो, फिर भी इस रासायनिक प्रभाव के कारण आप उस संबंध को उचित ठहराएँगे। व्यक्ति इन शारीरिक और भावनात्मक बंधनों से मुक्त नहीं होता। रसायनों की माँग इतनी प्रबल होती है कि सभी आध्यात्मिक विचार हवा में तिनके के समान उड़ जाएँगे।

इसीलिए इस संसार में इतनी पीड़ा, दुःख और संताप है। इसीलिए यहाँ इतने सारे अस्पताल और पागलखाने, इतने सारे नशाखोर और शराबखोर हैं। वे जीवन की एक सीढ़ी चूक गए हैं। अंततः उन्हें किसी संस्था में भर्ती करा दिया जाता है क्योंकि वे स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पाते।

ये व्यसन जन्म से नहीं है। ये जीवन में बाद में आते हैं। ये कमजोरी के एक पल में शुरू होते हैं और खून में घुस जाते हैं। यदि आप दीर्घायु चाहते हैं, सुख और आरोग्य के साथ जीना चाहते हैं, तो आपको सावधानी बरतनी होगी।

कोई आपको आदेश नहीं दे रहा; आप ही स्वयं को आदेश दे रहे हैं। यह किसी और का जीवन नहीं है; खुद आपका जीवन है। कोई देव आपके जीवन को नियंत्रित नहीं कर रहा है, आप स्वयं ही कर रहे हैं। जो स्वयं को उठाना जानता हो, उसे किसी बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं है। जब हम स्वयं के साथ हों, तब कोई भी हम पर हावी नहीं हो सकता। इस तरह हम सभी राजा और रानियाँ हैं।

धर्म भावना का अर्थ है अपने पक्ष में खड़ा होना। यह जानिए कि आप स्वयं के लिए ज़िम्मेदार हैं। यदि आप अपना खयाल नहीं रखेंगे, कोई और नहीं रखेगा। किसी को भी आपके जीवन को शासित करने का अधिकार नहीं है, यदि आप कानून या सौहार्द के विरुद्ध कोई काम न करें। अतः जब आपके नेत्र, नाक और जिह्वा मिष्टान्न की माँग कर रहे हैं, और आपका मस्तिष्क आनंद-लोक की सैर के लिए तत्पर है, तब अपनी बुद्धि को आत्मा के

आलोक में लाएँ और कहें, 'नहीं, यह मेरे लिए अच्छा नहीं है। जब तक मैं इसे अपने शरीर में घुसने नहीं दूँ, तब तक मुझमें शक्ति बनी रहेगी। एक बार इसे अपने रक्त-प्रवाह में डाल लूँ, यह मुझ पर हावी हो जाएगा।'

इसलिए धर्म आपको ऊँचा उठाने वाला तत्त्व है। ऐसे क्षण होंगे जब आप कगार पर खड़े होंगे, दुविधा में होंगे कि करूँ या ना करूँ? इन सूक्ष्म पलों में कौन आपकी रक्षा करता है? वहाँ कोई मित्र नहीं है। कोई बाहरी तत्व नहीं है। आप अकेले हैं। आपको तय करना है कि क्या करना है? यदि आपके अंदर जीवन के प्रति इस विश्वास की अनुभूति है, आप हर परिस्थिति में बलवान रहेंगे। आप स्वयं को वे कार्य करने से रोक देंगे जो आपको नुकसान पहुँचाते हैं, या आपको स्वयं से दूर ले जाते हैं। यदि आप ऐसे क्षणों में स्वयं को बचा सकें, तो आप हमेशा के लिए बचे रहेंगे।

धर्म का तीसरा अर्थ सत्य है। जब आप अपने अंदर के सत्य को खोजकर 'उसके अनुसार जीने लगेंगे, तो वह आपके लिए हर माप की कसौटी बन जाएगा। यदि कोई कार्य सत्य के अनुरूप है, तो आप उसे करेंगे, यदि नहीं, तो उसे नहीं करेंगे। यह औचित्य सिद्ध करने का बहाना नहीं है; यह अपनी आंतरिक कसौटी के अनुरूप कार्य करना है। अब सत्य आपका स्थायी आंतरिक साथी बन जाता है।

जब आप इसे अपने अंदर रखते हैं, तब आपको कोई भय नहीं सताता। जब आप भयरहित हैं, तो आपकी ऊर्जा स्वाभाविक रूप से बहती है। असत्य से ऊर्जा नष्ट हो जाती है। जब आप झूठे हों, तो आप अस्थिर हो जाते हैं, और आपकी ऊर्जा मंद हो जाती है। शरीर काँपने लगता है; वह अस्वाभाविक हो जाता है। धर्म के साथ आप संसार में सहजता से विचरण कर सकते हैं, पकड़े जाने के भय से मुक्त, क्योंकि आप सत्य में जी रहे हैं। संपूर्ण विश्व आपके लिए हाजिर हो जाता है। संपूर्ण विश्व आपका गृह है। जिनसे भी आप मिलेंगे, वे आपसे प्रेम करने लगेंगे। आपको छिपने की आवश्यकता नहीं है। आप दूसरों के अभिमतों और कसौटियों के अनुसार संसार को नहीं देखेंगे। आपकी कसौटी होगी आंतरिक सत्य, आंतरिक विश्वसनीयता।

धर्म का चौथा अर्थ है - प्रकृति या स्वभाव- धम्मो वत्थु सहावो। हर वस्तु की अपनी प्रकृति होती है। मिठाई की प्रकृति है मीठा लगना। काँटे की प्रकृति है चुभना। आग की प्रकृति है जलाना। नमक की प्रकृति है खारा लगना और गुलाब की प्रकृति है सुगंध बिखेरना। जब आप ध्यान करते हैं, तब अनुभूति कीजिए कि हर वस्तु अपनी प्रकृति के अनुसार ही कार्य करती है। शरीर, मन और आत्मा अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। इसलिए यह समझ लें कि किसी भी आकार को दोष देना निरर्थक है। वस्तुओं को उनके स्वभाव में देखें।

जब आप चीजों को इस अविकृत रूप में देखेंगे, तो आप स्वयं तय कर सकते हैं कि आपको क्या चाहिए। जब आप लोगों की प्रकृति जान जाते हैं, आप उनसे आसानी से निपट सकते हैं। जैसे, चोट पहुँचाना किसी व्यक्ति की प्रकृति नहीं होती, वह उसकी वर्तमान स्थिति है। यदि कोई व्यक्ति इस हानिकारक स्थिति में पाया जाता है, तो आप समझ सकते हैं कि यह किसी पूर्व अनुभव का नतीजा है। वह अपनी पीड़ा को किसी और पर थोपने का प्रयत्न कर रहा है। वास्तव में हमारी प्रकृति है प्रेममय होना, परदुःखकातर होना, सत्यव्रती होना, और उन्नयनशील रहना। इसे जानकर हम एक दूसरे के प्रति धीरज रखते हैं, और अपने आपके प्रति भी। हमें जानना होगा कि किसी नवीन संबंध या नवीन अध्यवसाय में रत होने से पहले इंतजार करना सीखें, अवकाश देना सीखें। पहले उस व्यक्ति, स्थान या वस्तु को अपनी प्रकृति का खुलासा करने का अवसर दें।

एक बार एक संत नदी के किनारे रह रहे थे। उन्होंने एक बिच्छू को पानी में गिरते देखा। यह देखकर कि वह डूब रहा है, उन्होंने उसे हथेली पर रखकर किनारे पर डाल दिया। जैसे ही बिच्छू हथेली पर चढ़ा, उसने संत को डंक मार दिया। उन्हें पीड़ा हुई और उन्होंने घाव को कपड़े से ढक लिया।

बिच्छू फिर से पानी के पास गया और कूदने लगा। संत ने सोचा, 'मूर्ख बिच्छू।' एक बार फिर वे करुणा से भर गए। पास में एक व्यक्ति खड़ा था जो यह सब देख रहा था। उसने संत से कहा, 'आप क्या कर रहे हैं?



क्या आपमें बुद्धि नहीं है? बिच्छू ने पहली बार आपको काटा है, फिर भी आप उसे दुबारा काटने का अवसर देना चाहते हैं?’

संत मुस्कुराकर बोले, ‘डूबते हुए भी बिच्छू अपनी डंक मारने की प्रकृति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है तो मैं अपनी करुणामय प्रकृति कैसे छोड़ सकता हूँ? मैं बिच्छू से निकृष्ट नहीं हो सकता। मैं ही रहूँगा। यही मेरी प्रकृति है। हर वस्तु की अपनी प्रकृति होती है।’

यह चिंतन आपको अपनी वास्तविकता के टापू पर पहुँचाता है, अपनी एकीकृत करने वाली शक्ति तक, अपनी आंतरिक कसौटी तक, अपनी प्रकृति की आंतरिक वृत्ति तक। इस संसार में जहाँ तरंगों निरंतर चलायमान हैं, यह आवश्यक नहीं है कि आप भी तरंगों के साथ निरंतर हिलते-डुलते रहें। यदि कोई स्थिर स्थान है, तो वह है धर्म का टापू। वह आप ही हैं। जब आप उस टापू पर रहेंगे, तब जान जाएँगे, ‘चाहे जैसा बवंडर आए, मैं गिरूँगा नहीं। प्रलोभन की चाहे जितनी हवाएँ चलें, मैं स्थिर रहूँगा। बाकी सब अस्थायी है। सत्य यहाँ है।’

इस अनुभव से आपमें किसी के प्रति कटुता या द्वेषभाव नहीं रहेगा। प्रशंसा और निंदा आपके जीवन से दूर चली जाएगी। आप इस संसार में कैसे रहते हैं और अपने जीवन में क्या लेते हैं, इसके प्रति जागरूक हो जाएँगे। आप अपना संतुलन बनाए रखेंगे। आपकी प्रकृति की प्रकृति क्या है? प्रेम, करुणा, सत्यनिष्ठा एवं अभिज्ञता। जीवन की देख-रेख करना, जीवन के साथ बाँटना, और ईश्वरत्व प्राप्त करने का उद्यम करना, जो आपकी आत्मा की सर्वोच्च स्थिति है।

आप जानते हैं कि इस धर्म, इस सत्य के सिवाय इस ब्रह्मांड की हर वस्तु आपके जीवन से चली जाएगी। यह आपका चिरस्थायी मित्र है। इसकी अनुभूति करके आप कभी अकेले नहीं होंगे। जो आता-जाता है, वह संसार है, निरंतर गतिशील।

जब आपको अकेलापन सताए और आपको लगे कि सब कुछ व्यर्थ और खाली है, तो सोचिए, ‘मेरे अंदर है, मेरे अंदर कुछ है, मेरे अंदर

वस्तुत्व है। वह धर्म है। वह आत्मचेतना को जगाने वाली चाबी है।' उसकी निरंतर अनुभूति करते रहिए ताकि आप अकेलेपन की अनुभूति कभी न करें।

जब आपमें यह चेतना आ जाएगी, आप स्वयं अपने शिक्षक हो जाएँगे। बाहरी शिक्षक का काम यही है कि आपको याद दिलाए: 'चाहे आप बीहड़ वन में हों, शहर में हों, पर्वत की चोटी पर हों, गुफा में हों, आप कभी अकेले नहीं हैं। आप अपने शिक्षक के साथ हैं, अपने धर्म के साथ हैं, अपने सत्य के साथ हैं और अपने एकत्व के साथ हैं।'

### चिंतन के बिंदु

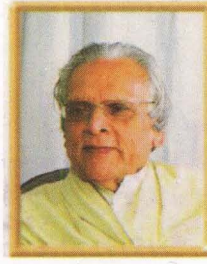
मैं असत्य की लहरों द्वारा थपेड़े जाने से स्वयं को रोककर, अपने स्थिर टापू पर, अपने धर्म पर कदम रखकर खड़ा हो जाऊँ।

अलगाव पीड़ा है। एकता शांति है। मैं अपनी उच्चतर सत्ता से अलग हो गया, इसीलिए मेरे अंतर्मन में पीड़ा है। जब मैं अपने उच्चतर स्वयं से जुड़ जाऊँगा, तब मुझे कुछ भी विचलित नहीं करेगा। मैं शांत हूँ। यह आंतरिक एकता मुझे पूर्ण करती है, मुझे पोषित करती है।

कोई भी मेरे जीवन को नियंत्रित नहीं कर रहा है। मैं अपने जीवन को स्वयं संचालित कर रहा हूँ। मुझे बस सशक्त बनने का निर्णय लेना है, कमजोर होने का नहीं।

चाहे कोई मेरी बुराई करे या भलाई, यह महत्त्वहीन है। मैं आत्मा हूँ। मैं धर्म के इस टापू पर खड़ा हूँ, मैं स्थिर हूँ। बाकी सब क्षणिक है; सत्य यहीं है।





श्री चित्रभानु का जन्म २६ जुलाई सन् १९२२ को राजस्थान के तखतगढ़ में एक धार्मिक परिवार में हुआ। महाविद्यालय के आधुनिक शिक्षण के पश्चात् जीवन की असारतारूप ज्ञानगर्भित वैराग्य उत्पन्न होने पर आपने १९४२ में बोरडी (महाराष्ट्र) के सागरतट पर पूज्य आचार्य श्री चन्द्रसागरसूरिजी की छत्रछाया में दीक्षा ग्रहण की और मुनि चन्द्रप्रभसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सन् १९६९ में भगवान महावीर के जन्म दिवस पर समग्र मुंबई के कत्लखाने बंद करवाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य आपने किया। आंतरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर पश्चिमी देशों में जैन धर्म का प्रचार करने हेतु आप सन् १९७० में जिनेवा में द्वितीय आध्यात्मिक शिखर परिषद् में गए तथा जैन धर्म के सिद्धांतों की अजय घोषणा की, और जैन धर्म में नई क्रान्ति लाकर नये इतिहास का सृजन किया। विश्वविद्यालय में सन् १९७९ में सर्वधर्म समभाव शाखा के आप प्राध्यापक बने।

सन् १९८१ में सेंडीयेगो के सागर तट पर सत्रह दिन तक ध्यान, साधना करते हुए आपको दिव्य आत्मज्ञान के साथ सोहं का साक्षात्कार हुआ, आप विश्वमानव संत बने और मुक्त प्रवासी रहे।

वर्तमान में आप जैन मेडिटेशन इन्टरनेशनल सेन्टर, न्यूयॉर्क, दिव्य ज्ञान संघ, मुंबई और शाकाहार परिषद् के संस्थापक तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शक हैं।

आपके विदेशी विद्यार्थियों और साधकों की संख्या अगणित है। विदेशों के अलग-अलग प्रदेशों में आपके द्वारा प्रस्थापित ६४ धर्म प्रचार केन्द्र हैं। आपकी प्रेरणा से अमरीका के विचारशील धर्म श्रद्धालु लोगों ने 'फेडरेशन ऑफ जैना' ऑर्गनाइजेशन की स्थापना की है और उसके अंतर्गत १४ भव्य मन्दिर तथा भवनों का निर्माण हुआ है। यंग जैन एसोसिएशन के हजारों युवा वर्ग के आप प्रेरणादाता हैं।





श्री चित्रभानु